प्रस्तावना

कर्म का सिद्धांत अकाट्य है। जो जैसा करता है वैसा ही फल पाता है चाहे राजा हो या रंक, सेठ हो या नौकर। अरे! स्वयं भगवान भी अवतार लेकर क्यों न आयें? कर्म का अकाट्य सिद्धांत उनको भी स्वीकार करना पड़ता है।

पूज्य बापूजी कहते हैं– "आप कर्म करने में सावधान रहो। ऐसे कर्म न करो जो आपको बाँधकर नरकों में ले जायें। किंतु अभी जो पूर्वकर्मों का फल मिल रहा है, उसमें आप प्रसन्न रहो। चाहे मीठे फल मिलें,

चाहे खट्टे या कड़वे मिलें, प्रसन्नता से उन्हें बीतने दो। यदि मीठे फलों से संघर्ष किया तो खटास या कड़वापन बढ़ जायेगा। अतः सबको बीतने दो।

जो बीत गयी सो बीत गयी, तकदीर का शिकवा कौन करे?
जो तीर कमान से निकल गया, उस तीर का पीछा कौन करे?

पहले जो कर्म किये हैं, उनका फल मिल रहा है तो उसे बीतने दो। उसमें सत्यबुद्धि न करो। जैसे गंगा का पानी निरंतर बह रहा है, वैसे ही सारी परिस्थितियाँ बहती चली जा रही हैं। जो सदा-सर्वदा रहता है, उस परमात्मा में प्रीति करो और जो बह रहा है उसका उपयोग करो।"

प्रस्तुत पुस्तक कर्म के अकाव्य सिद्धांत को समझाकर, आपको मानव से महेश्वर तक की यात्रा कराने में सहायक होगी, इसी आशा के साथ.........

विनीत
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
अमदावाद आश्रम।

अनुक्रम

गहना कर्मणो गतिः

कर्म की गति बड़ी गहन है।

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥

'कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए और अकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए तथा विकर्म का स्वरूप भी जानना चाहिए, क्योंकि कर्म की गति गहन है।'

(गीताः ४.१७)

कर्म ऐसे करें कि कर्म विकर्म न बनें, दूषित या बंधनकारक न बनें, वरन् अकर्म में बदल जायें, कर्ता अकर्ता हो जाय और अपने परमात्म-पद को पा लें।

अमदावाद में वासणा नामक एक इलाका है। वहाँ एक इंजीनियर रहता था, जो नहर का कार्यभार भी सँभालता था। वही आदेश देता था कि किस क्षेत्र में पानी देना है। एक बार एक किसान ने एक लिफाफे में सौ-सौ रूपये की दस नोट देते हुए कहाः "साहब ! कुछ भी हो, पर फलाने व्यक्ति को पानी न मिले। मेरा इतना काम आप कर दीजिए।"

साहब ने सोचा कि 'हजार रूपये मेरे भाग्य में आनेवाले हैं इसीलिए यह दे रहा है। किंतु गलत ढंग से रुपये लेकर मैं क्यों कर्मबंधन में पड़ूँ? हजार रुपये आने वाले होंगे तो कैसे भी करके आ जायेंगे। मैं गलत कर्म करके हजार रुपये क्यों लूँ? मेरे अच्छे कर्मों से अपने-आप रुपये आ जायेंगे।' अतः उसने हजार रुपये उस किसान को लौटा दिये।

कुछ महीनों के बाद यह इंजीनियर एक बार मुंबई से लौट रहा था। मुंबई से एक व्यापारी का लड़का भी साथ बैठा। वह लड़का सूरत आकर जल्दबाजी में उतर गया और अपनी अटैची गाड़ी में ही भूल गया। वह इंजीनियर समझ गया कि अटैची उसी लड़के की है। अमदावाद रेलवे स्टेशन पर गाड़ी रुकी। अटैची लावारिस पड़ी थी। उस इंजीनियर ने अटैची उठा ली और घर ले जाकर खोली। उसमें से पता और टेलिफोन नंबर लिया।

इधर सूरत में व्यापारी का लड़का बड़ा परेशान हो रहा था कि 'हीरे के व्यापारी के इतने रुपये थे, इतने लाख का कच्चा माल भी था। किसको बतायें? बतायेंगे तब भी मुसीबत होगी।' दूसरे दिन सुबह-सुबह फोन आया कि "आपकी अटैची रेलगाड़ी में रह गयी थी जिसे मैं ले आया हूँ और मेरा यह पता है, आप इसे ले जाइये।"

बाप-बेटा गाड़ी लेकर वासणा पहुँचे और साहब के बँगले पर पहुँचकर उन्होंने पूछाः "साहब ! आप ही ने फोन किया था?"

साहबः "आप तसल्ली रखें। आपका सब सामान सुरक्षित है।"

साहब ने अटैची दी। व्यापारी ने देखा कि अंदर सभी माल-सामान एवं रुपये ज्यों के त्यों हैं। 'ये साहब नहीं, भगवान हैं....' ऐसा सोचकर उसकी आँखों में आँसू आ गये, उसका दिल भर आया। उसने कोरे लिफाफे में कुछ रुपये रखे और साहब के पैरों पर रखकर हाथ जोड़ते हुए बोलाः "साहब ! फूल नहीं तो फूल की पंखुड़ी ही सही, हमारी इतनी सेवा जरूर स्वीकार करना।"

साहबः "एक हजार रुपये रखे हैं न?"

व्यापारीः "साहब! आपको कैसे पता चला कि एक हजार रुपये हैं?"

साहबः "एक हजार रुपये मुझे मिल रहे थे बुरा कर्म करने के लिए किंतु मैंने वह बुरा कार्य यह सोचकर नहीं किया कि यदि हजार रुपये मेरे भाग्य में होंगे तो कैसे भी करके आयेंगे।"

व्यापारीः "साहब ! आप ठीक कहते हैं। इसमें हजार रूपये ही हैं।"

जो लोग टेढ़े–मेढ़े रास्ते से कुछ ले लेते हैं वे तो दुष्कर्म कर पाप कमा लेते हैं, लेकिन जो धीरज रखते हैं वे ईमानदारी से उतना पा ही लेते हैं जितना उनके भाग्य में होता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– **गहना कर्मणो गतिः।**

एक जाने–माने साधु ने मुझे यह घटना सुनायी थीः

बापूजी! यहाँ गयाजी में एक बड़े अच्छे जाने–माने पंडित रहते थे। एक बार नेपाल नरेश साधारण गरीब मारवाड़ी जैसे कपड़े पहन कर पंडितों के पीछे भटका कि 'मेरे दादा का पिण्डदान करवा दो। मेरे पास पैसे बिल्कुल नहीं हैं। हाँ, थोड़े से लड्डू लाया हूँ, वही दक्षिणा में दे सकूँगा।'

जो लोभी पंडित थे उन्होंने तो इनकार कर दिया लेकिन वहाँ का जो जाना–माना पंडित था उसने कहाः "भाई ! पैसे की तो कोई बात ही नहीं है। मैं पिण्डदान करवा देता हूँ।"

फटे–चिथड़े कपड़े पहनकर गरीब मारवाड़ी के वेश में छुपे हुए नेपाल नरेश के दादा का पिण्डदान करवा दिया उस पंडित ने। पिण्डदान सम्पन्न होने के बाद नरेश ने कहाः "पंडित जी ! पिण्डदान करवाने के बाद कुछ–न–कुछ दक्षिणा तो देनी चाहिए। मैं कुछ लड्डू लाया हूँ। मैं चला जाऊँ उसके बाद यह गठरी आप ही खोलेंगे, इतना वचन दे दीजिए।"

"अच्छा भाई ! तू गरीब है। तेरे लड्डू मैं खा लूँगा। वचन देता हूँ कि गठरी भी मैं ही खोलूँगा।"

नेपाल नरेश चला गया। पंडित ने गठरी खोली तो उसमें से एक–एक किलो के सोने के उन्नीस लड्डू निकले ! वे पंडित अपने जीवनकाल में बड़े–बड़े धर्मकार्य करते रहे लेकिन सोने के वे लड्डू खर्च में आये ही नहीं।

जो अच्छा कार्य करता है उसके पास अच्छे काम के लिए कहीं न कहीं से धन, वस्तुएँ अनायास आ ही जाती हैं। अतः उन्नीस किलो के सोने लड्डू ऐसे ही पड़े रहे।

जब–जब हम कर्म करें तो कर्म को अकर्म में बदल दें अर्थात् कर्म का फल ईश्वर को अर्पित कर दें अथवा कर्म में से कर्तापन हटा दें तो कर्म करते हुए भी हो गया अकर्म। कर्म तो किये लेकिन उनका बंधन नहीं रहा।

संसारी आदमी कर्म को बंधनकारक बना देता है, साधक कर्म को अकर्म बनाने का यत्न करता है लेकिन सिद्ध पुरुष का प्रत्येक कर्म स्वाभाविक रूप से अकर्म ही होता है। रामजी युद्ध जैसा घोर कर्म करते हैं लेकिन अपनी ओर से युद्ध नहीं करते, रावण आमंत्रित करता है तब करते हैं। अतः उनका युद्ध जैसा घोर कर्म भी अकर्म ही है। आप भी कर्म करें तो अकर्ता होकर करें, न कि कर्ता होकर। कर्ता भाव से किया गया कर्म बंधन में डाल देता है एवं उसका फल भोगना ही पड़ता है।

राजस्थान के ढोगरा गाँव (तह, सुजानगढ़, जि. चुरु) की घटना हैः एक बकरे को देखकर ठकुराइन के मुँह में पानी आ गया। वह अपने पति से बोलीः "देखो जी ! यह बकरा कितना हृष्ट–पुष्ट है !"

बकरा पहुँच गया ठाकुर किशनसिंह के घर और हलाल होकर उनके पेट में भी पहुँच गया।

बारह महीने के बाद ठाकुर किशनसिंह के घर बेटे का जन्म हुआ। बेटे का नाम बालसिंह रखा गया। वह तेरह साल का हुआ तो उसकी मँगनी हो गयी एवं चौदहवाँ पूरा होते–होते शादी की तैयारी भी हो गयी।

शादी के वक्त ब्राह्मण ने गणेश–पूजन के लिए उसको बिठाया किंतु यह क्या ! ब्राह्मण विधि शुरु करे उसके पहले ही लड़के ने पैर पसारे और लेट गया। ब्राह्मण ने पूछाः "क्या हुआ... क्या हुआ?"

कोई जवाब नहीं। माँ रोयी, बाप रोया। सारे बाराती इकट्ठे हो गये। पूछने लगे कि "क्या हुआ?"

लड़काः "कुछ नहीं हुआ है। अब तुम्हारा–मेरा लेखा–जोखा पूरा हो गया है।"

पिताः "वह कैसे, बेटा?"

लड़काः "बकरियों को गर्भाधान कराने के लिए उदरासर के चारण कुँअरदान ने जो बकरा छोड़ रखा था, उसे तुम ठकुराइन के कहने पर उठा लाये थे। वही बकरा तुम्हारे पेट में पहुँचा और समय पाकर तुम्हारा बेटा होकर पैदा हुआ। वह बेटा लेना-देना पूरा करके अब जा रहा है। राम.. राम..."

बकरे की काया से आया हुआ बालसिंह तो रवाना हो गया किंतु किशनसिंह सिर कूटते रह गये।

तुलसीदास जी कहते हैं-

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

(श्रीरामचरित. अयो.का. २१८.२)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

कर्म कैसे करें?

श्रीमद् भगवद् गीता के तीसरे अध्याय 'कर्मयोग' में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

'तू निरंतर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्यकर्म को भलीभाँति करता रह क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।'

(गीताः ३.१९)

गीता में परमात्म-प्राप्ति के तीन मार्ग बताये गये हैं- ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग और निष्काम कर्ममार्ग। शास्त्रों में मुख्यतः दो प्रकार के कर्मों का वर्णन किया गया हैः विहित कर्म और निषिद्ध कर्म। जिन कर्मों को करने के लिए शास्त्रों में उपदेश किया गया है, उन्हें विहित कर्म कहते हैं और जिन कर्म को करने के लिए शास्त्रों में मनाई की गयी है, उन्हें निषिद्ध कर्म कहते हैं।

हनुमानजी ने भगवान श्रीराम के कार्य के लिए लंका जला दी। उनका यह कार्य विहित कार्य है, क्योंकि उन्होंने अपने स्वामी के सेवाकार्य के रूप में ही लंका जलायी। परंतु उनका अनुसरण करके लोग एक-दूसरे के घर जलाने लग जायें तो यह धर्म नहीं अधर्म होगा, मनमानी होगी।

हम जैसे-जैसे कर्म करते हैं, वैसे-वैसे लोकों की हमें प्राप्ति होती है। इसलिए हमेशा अशुभ कर्मों का त्याग करके शुभ कर्म करने चाहिए।

जो कर्म स्वयं को और दूसरों को भी सुख-शांति दें तथा देर-सवेर भगवान तक पहुँचा दें, वे शुभ कर्म हैं और जो क्षणभर के लिए ही (अस्थायी) सुख दें और भविष्य में अपने को तथा दूसरों को भगवान से दूर कर दें, कष्ट दें, नरकों में पहुँचा दें उन्हें अशुभ कर्म कहते हैं।

किये हुए शुभ या अशुभ कर्म कई जन्मों तक मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ते। पूर्वजन्मों के कर्मों के जैसे संस्कार होते हैं, वैसा फल भोगना पड़ता है।

गहना कर्मणो गतिः। कर्मों की गति बड़ी गहन होती है। कर्मों की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। वे तो जड़ हैं। उन्हें पता नहीं है कि वे कर्म हैं। वे वृत्ति से प्रतीत होते हैं। यदि विहित (शास्त्रोक्त) संस्कार होते हैं तो पुण्य प्रतीत होता है और निषिद्ध संस्कार होते हैं तो पाप प्रतीत होता है। अतः विहित कर्म करें। विहित कर्म भी नियंत्रित होने चाहिए। नियंत्रित विहित कर्म ही धर्म बन जाता है।

सुबह जल्दी उठकर थोड़ी देर के लिए परमात्मा के ध्यान में शांत हो जाना और सूर्योदय से पहले

स्नान करना, संध्या–वंदन इत्यादि करना – ये कर्म स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अच्छे हं? और सात्त्विक होने के कारण पुण्यमय भी हैं। परंतु किसी के मन में विपरीत संस्कार पड़े हैं तो वह सोचेगा कि 'इतनी सुबह उठकर स्नान करके क्या करूँगा?' ऐसे लोग सूर्योदय के पश्चात् उठते हैं, उठते ही सबसे पहले बिस्तर पर चाय की माँग करते हैं और बिना स्नान किये ही नाश्ता कर लेते हैं। शास्त्रानुसार ये निषिद्ध कर्म हैं। ऐसे लोग वर्तमान में भले ही अपने को सुखी मान लें परंतु आगे चलकर शरीर अधिक रोग–शोकाग्रस्त होगा। यदि सावधान नहीं रहे तो तमस् के कारण नारकीय योनियों में जाना पड़ेगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने 'गीता' में कहा भी कहा है कि 'मुझे इन तीन लोकों में न तो कोई कर्तव्य है और न ही प्राप्त करने योग्य कोई वस्तु अप्राप्त है। फिर भी मैं कर्म में ही बरतता हूँ।'

इसलिए विहित और नियंत्रित कर्म करें। ऐसा नहीं कि शास्त्रों के अनुसार कर्म तो करते रहें किंतु उनका कोई अंत ही न हो। कर्मों का इतना अधिक विस्तार न करें कि परमात्मा के लिए घड़ीभर भी समय न मिले। स्कूटर चालू करने के लिए व्यक्ति 'किक' लगाता है परंतु चालू होने के बाद भी वह 'किक' ही लगाता रहे तो उसके जैसा मूर्ख इस दुनिया में कोई नहीं होगा।

अतः कर्म तो करो परंतु लक्ष्य रखो केवल आत्मज्ञान पाने का, परमात्म–सुख पाने का। अनासक्त होकर कर्म करो, साधना समझकर कर्म करो। ईश्वर परायण कर्म, कर्म होते हुए भी ईश्वर को पाने में सहयोगी बन जाता है।

आज आप किसी कार्यालय में काम करते हैं और वेतन लेते हैं तो वह है नौकरी, किंतु किसी धार्मिक संस्था में आप वही काम करते हैं और वेतन नहीं लेते तो आपका वही कर्म धर्म बन जाता है।

धर्म में बिरति योग तें ग्याना.... धर्म से वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्य से मनुष्य की विषय–भोगों में फँस मरने की वृत्ति कम हो जाती है। अगर आपको संसार से वैराग्य उत्पन्न हो रहा है तो समझना कि आप धर्म के रास्ते पर हैं और अगर राग उत्पन्न हो रहा है तो समझना कि आप अधर्म के मार्ग पर हैं।

विहित कर्म से धर्म उत्पन्न होगा, धर्म से वैराग्य उत्पन्न होगा। पहले जो रागाकार वृत्ति आपको इधर–उधर भटका रही थी, वह शांतस्वरूप में आयेगी तो योग हो जायेगा। योग में वृत्ति एकदम सूक्ष्म हो जायेगी तो बन जायेगी ऋतम्भरा प्रज्ञा।

विहित संस्कार हों, वृत्ति सूक्ष्मतम हो और ब्रह्मवेत्ता सदगुरुओं के वचनों में श्रद्धा हो तो ब्रह्म का साक्षात्कार करने में देर नहीं लगेगी।

संसारी विषय–भोगों को प्राप्त करने के लिए कितने भी निषिद्ध कर्म करके भोग भोगे, किंतु भोगने के बाद खिन्नता, बहिर्मुखता अथवा बीमारी के सिवाय क्या हाथ लगा? विहित कर्म करने से जो भगवत्सुख मिलता है वह अंतरात्मा को असीम सुख देने वाला होता है।

जो कर्म होने चाहिए वे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष की उपस्थिति मात्र से स्वयं ही होने लगते हैं और जो नहीं होने चाहिए वे कर्म अपने–आप छूट जाते हैं। परमात्मा की दी हुई कर्म करने की शक्ति का सदुपयोग करके परमात्मा को पाने वाले विवेकी पुरुष समस्त कर्मबन्धनों से मुक्त हो जाते हैं।

'गीता' में भगवान ने कहा भी है कि ब्रह्मज्ञानी महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न ही कर्म न करने से कोई प्रयोजन रहता है। वे कर्म तो करते हैं परंतु कर्मबंधन से रहित होते हैं।

एक ब्रह्मज्ञानी महापुरुष 'पंचदशी' पढ़ रहे थे। किसी ने पूछाः ''बाबाजी ! आप तो ब्रह्मज्ञानी हैं, जीवनमुक्त हैं फिर आपको शास्त्र पढ़ने की क्या आवश्यकता है? आप तो अपनी आत्म–मस्ती में मस्त हैं, फिर पंचदशी पढ़ने का क्या प्रयोजन है?"

बाबाजीः "मैं देख रहा हूँ कि शास्त्रों में मेरी महिमा का कैसा वर्णन किया गया है।"

अपनी करने की शक्ति का सदुपयोग करके जो ब्रह्मानंद को पा लेते हैं वे ब्रह्मवेत्ता महापुरुष ब्रह्म से अभिन्न हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश उन्हें अपना ही स्वरूप दिखते हैं। वे ब्रह्मा होकर जगत की सृष्टि करते हैं, विष्णु होकर पालन करते हैं और रूद्र होकर संहार भी करते हैं।

आप भी अपनी करने की शक्ति का सदुपयोग करके उस अमर पद को पा लो। जो करो, ईश्वर को पाने के लिए ही करो। अपनी अहंता-ममता को आत्मा-परमात्मा में मिलाकर परम प्रसाद में पावन होते जाओ...

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

कर्मफल

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥

'जो मेरे शरण होकर जरा और मरण से छूटने के लिए यत्न करते हैं, वे पुरुष उस ब्रह्म को, सम्पूर्ण अध्यात्म को, सम्पूर्ण कर्म को जानते हैं।'

(गीताः ७.२१)

'कर्म स्वयं जड़ होते हैं.... कर्ता को उसकी भावना के अनुसार फल मिलता है....' समझना कर्मों को उसकी भावना के अनुसार फल मिलता है...' ऐसा समझना कर्मों को अखिल रूप से, सम्पूर्ण रूप से जानना हो गया।

कर्म को पता नहीं कि वह कर्म है। शरीर को पता नहीं कि वह शरीर है। मकान को पता नहीं कि वह मकान है। यज्ञ को पता नहीं कि वह यज्ञ है। क्यों? क्योंकि सब जड़ हैं लेकिन कर्ता जिस भावना, जिस विधि से जो-जो कार्य करता है, उसे वैसा-वैसा फल मिलता है।

किसी दुष्ट ने आपको चाकू दिखा दिया तो आप थाने में उसके खिलाफ शिकायत करते हैं। कोई आपको केवल मारने की धमकी देता है तब भी आप उसके विरुद्ध शिकायत करते हैं। लेकिन डॉक्टर न आपको धमकी देता है, न चाकू दिखाता है बल्कि चाकू से आपके शरीर की काट-छाँट करता है, फिर भी आप उसे 'फीस' देते हैं क्यों? क्योंकि उसका उद्देश्य अच्छा था। उद्देश्य था मरीज को ठीक करना, न कि बदला लेना। ऐसे ही आप भी अपने कर्मों का उद्देश्य बदल दो।

आप भोजन बनाओ लेकिन मजा लेने के लिए नहीं, बल्कि ठाकुरजी को प्रसन्न करने के लिए बनाओ। परिवार के लिए, पति के लिए, बच्चों के लिए भोजन बनाओगी तो वह आपका व्यवहारिक कर्तव्य हो जायेगा लेकिन 'परिवारवालों की, पति की और बच्चों की गहराई में मेरा परमेश्वर है...' ऐसा समझकर परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए भोजन बनाओगी तो वह बंदगी हो जायेगा, पूजा हो जायेगा, मुक्ति दिलानेवाला हो जायेगा।

वस्त्र पहनो तो शरीर की रक्षा के लिए, मर्यादा की रक्षा के लिए पहनो। यदि मजा लेने के लिए, फैशन के लिए वस्त्र पहनोगे, आवारा होकर घूमते फिरोगे तो वस्त्र पहनने का कर्म भी बंधनकारक हो जायेगा।

इसी प्रकार बेटे को खिलाया-पिलाया, पढ़ाया-लिखाया... यह तो ठीक है। लेकिन 'बड़ा होकर बेटा मुझे सुख देगा...' ऐसा भाव रखोगे तो यह आपके लिए बंधन हो जायेगा।

सुख का आश्रय न लो। कर्म तो करो... कर्तव्य समझकर करोगे तो ठीक है लेकिन ईश्वर की प्रीति के लिए कर्म करोगे तो कर्म, कर्म न रहेगा, साधना हो जायेगा, पूजा हो जायेगा।

कल्पना करोः दो व्यक्ति क्लर्क की नौकरी करते हैं और दोनों को तीन–चार हजार रूपये मासिक वेतन मिलता है। एक कर्म करने की कला जानता है और दूसरा कर्म को बंधन बना देता है। उसके घर बहन आयी दो बच्चों को लेकर। पति के साथ उसकी अनबन हो गयी है। वह बोलता हैः "एक तो महँगाई है, ५०० रुपये मकान का किराया है, बाकी दूध का बिल, लाइट का बिल, बच्चों को पढ़ाना..... और यह आ गयी दो बच्चों को लेकर? मैं तो मर गया..." इस तरह वह दिन–रात दुःखी होता रहता है। कभी अपने बच्चों को मारता है, कभी पत्नी को आँखें दिखाता है, कभी बहन को सुना देता है। वह खिन्न होकर कर्म कर रहा है, मजदूरी कर रहा है और बंधन में पड़ रहा है।

दूसरे व्यक्ति के पास उसकी बहन दो बच्चों को लेकर आयी। वह कहता हैः "बहन ! तुम संकोच मत करना। अभी जीजाजी का मन ऐसा–वैसा है तो कोई बात नहीं। जीजाजी का घर भी तुम्हारा है और यह घर भी तुम्हारा ही है। भाई भी तुम्हारा ही है।"

बहनः "भैया ! मैं आप पर बोझ बनकर आ गयी हूँ।"

भाईः "नहीं–नहीं, बोझ किस बात का? तू तो दो रोटी ही खाती है और काम में कितनी मदद करती है ! तेरे बच्चों को भी देख, मुझे 'मामा–मामा' बोलते हैं, कितनी खुशी देते हैं ! महँगाई है तो क्या हुआ? मिल–जुलकर खाते हैं। ये दिन भी बीत जायेंगे। बहन ! तू संकोच मत करना और ऐसा मत समझना कि भाई पर बोझ पड़ता है। बोझ–वोझ क्या है? यह भी भगवान ने अवसर दिया है सेवा करने का।"

यह व्यक्ति बहन की दुआ ले रहा है, पत्नी का धन्यवाद ले रहा है, माँ का आशीर्वाद ले रहा है और अपनी अंतरात्मा का संतोष पा रहा है। पहला व्यक्ति जल भुन रहा है, माता की लानत ले रहा है, पत्नी की दुत्कार ले रहा है और बहन की बद्दुआ ले रहा है।

कर्म तो दोनों एक सा ही कर रहे हैं लेकिन एक प्रसन्न होकर, ईश्वर की सेवा समझकर कर रहा है और दूसरा खिन्न होकर, बोझ समझकर कर रहा है। कर्म तो वही है लेकिन भावना की भिन्नता ने एक को सुखी तो दूसरे को दुःखी कर दिया। अतः जो जैसे कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है।

जलियावाला बाग में जनरल डायर ने बहुत जुल्म किया, कितने ही निर्दोष लोगों की हत्या करवायी। क्यों? उसने सोचा था कि 'इस प्रकार आजादी के नारे लगाने वालों को जलियाँवाला बाग में नष्ट कर दूँगा तो मेरा नाम होगा, मेरी पदोन्नति होगी...' लेकिन नाम और पदोन्नति तो क्या, लानतों की बौछारें पड़ी उस पर। उससे त्यागपत्र माँगा गया, नौकरी से निकाला गया और शाही महल से बाहर कर दिया गया। अंत में भारतवासियों के उस हत्यारे को भारत के बहादुर वीर ऊधमसिंह ने गोली मारकर नरक की ओर धकेल दिया। मरने के बाद भी कितने हजार वर्षों तक वह प्रेत की योनि में भटकेगा, यह तो भगवान ही जानते हैं।

जापान के हिरोशिमा एवं नागासाकी शहर पर बम गिराने वाला मेजर टॉम फेरेबी का भी बड़ा बुरा हाल हुआ। बम गिराकर जब वह घर पहुँचा तो उसकी दादी माँ ने कहाः "तू अमानवीय कर्म करके आया है।" उसकी अंतरात्मा ग्लानि से फटी जा रही थी। उसने तो इतने दुःख देखे कि इतिहास उसकी दुःखद आत्मकथा से भरा पड़ा है।

जब बुरा या अच्छा कर्म करते हैं तो उसका फल तुरंत चाहे न भी मिले लेकिन हृदय में ग्लानि या सुख–शांति का एहसास तुरंत होता है एवं बुरे या अच्छे संस्कार पड़ते हैं।

अतः मनुष्य को चाहिए कि वह बुरे कर्मों से तो बचे लेकिन अच्छे कर्म भी ईश्वर की प्रीति के लिए करे। कर्म करके सुख लेने की, वाहवाही लेने की वासना को छोड़कर सुख देने की, ईश्वर को पाने की भावना धारण कीजिये। ऐसा करने से आपके कर्म ईश्वर–प्रीतयर्थ हो जायेंगे। ईश्वर की प्रीति के लिए किये गये कर्म फिर जन्म–मरण के बंधन में नहीं डालेंगे वरन् मुक्ति दिलाने में सफल हो जायेंगे।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

'मैं संत कैसे बना?'

सखर (पाकिस्तान) में साधुबेला नामक एक आश्रम था। रमेशचंद्र नाम के आदमी को उस समय के एक संत ने अपने जीवन-कथा सुनायी थी और कहा था कि मेरी यह कथा सब लोगों को सुनाना। मैं संत कैसे बना यह समाज में जाहिर करना। वह रमेशचंद्र बाद में पाकिस्तान छोड़कर मुंबई में आ गया। उस संत ने अपनी कहानी उसे बताते हुए कहा थाः

"जब मैं गृहस्थ था तब मेरे दिन कठिनाई से बीत रहे थे। मेरे पास पैसे नहीं थे। एक मित्र ने अपनी पूँजी लगाकर रुई का धंधा शुरु किया और मुझे अपना हिस्सेदार बनाया। हम रुई खरीदकर उसका संग्रह करते और मुंबई में बेच देते। धंधे में अच्छा मुनाफा होने लगा।

एक बार हम दोनों मित्रों को वहाँ के एक व्यापारी ने मुनाफे के एक लाख रुपये लेने के लिए बुलाया। रुपये लेकर हम वापस आ रहे थे। रास्ते में एक सराय में रात्रि गुजारने के लिए हम रुके। आज से साठ-सत्तर वर्ष पहले की बात है। उस समय का एक लाख जिस समय सोना साठ-सत्तर रुपये तोला था। मैंने सोचाः 'एक लाख में से पचास हजार तो मित्र ले जायेगा।' हालाँकि धंधे में सारी पूँजी उसी ने लगायी थी फिर भी मुझे मित्र के नाते आधा हिस्सा दे रहा था, तो भी मेरी नियत बिगड़ी। मैंने उसे दूध में जहर मिलाकर पिला दिया। लाश को ठिकाने लगाकर अपने गाँव चला गया। मित्र के कुटुम्बी मेरे पास आये तब मैंने नाटक किया, आँसू बहाये और उनको दस हजार रुपये देते हुए कहा कि "मेरा प्यारा मित्र रास्ते में बीमार हो गया, एकाएक पेट दुखने लगा, काफी इलाज किये लेकिन... वह हम सबको छोड़कर विदा हो गया।" दस हजार रुपये देखकर उन्हें लगा कि 'यह बड़ा ईमानदार है। बीस हजार मुनाफा हुआ होगा उसमें से दस हजार दे रहा है।' उन्हें मेरी बात पर यकीन आ गया।

बाद में तो मेरे घर में धन-वैभव हो गया। नब्बे हजार मेरे हिस्से में आ गये थे। मैं जलसा करने लगा। मेरे घर पुत्र का जन्म हुआ। मेरे आनंद का ठिकाना न रहा। बेटा कुछ बड़ा हुआ कि वह किसी असाध्य रोग से ग्रस्त हो गया। रोग ऐसा था कि उसे स्वस्थ करने में भारत के किसी डॉक्टर का बस न चला। मैं अपने लाडले को स्विटजरलैंड ले गया। काफी इलाज करवाये, पानी की तरह पैसा खर्च किया, बड़े-बड़े डॉक्टरों को दिखाया लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। मेरा करीब-करीब सारा धन नष्ट हो गया। और धन कमाया वह भी खर्च हो गया। आखिर निराश होकर बच्चे को भारत में वापस ले आया। मेरा इकलौता बेटा ! अब कोई उपाय नहीं बचा था। डॉक्टर, वैद्य, हकीमों के इलाज चालू रखे। रात्रि को मुझे नींद नहीं आती और बेटा दर्द से चिल्लाता रहता।

एक दिन बेटा मूर्छित-सा पड़ा था। उसे देखते-देखते मैं बहुत व्याकुल हो गया और विह्वल होकर उससे पूछाः "बेटा ! तू क्यों दिनोंदिन क्षीण होता चला जा रहा है? अब तेरे लिए मैं क्या करूँ? मेरे लाडले लाल ! तेरा यह बाप आँसू बहाता है। अब तो अच्छा हो जा पुत्र !"

मैंने नाभि से आवाज देकर बेटे को पुकारा तो वह हँसने लगा। मुझे आश्चर्य हुआ कि अभी तो बेहोश था फिर कैसे हँसी आयी? मैंने उससे पूछाः "बेटा ! एकाएक कैसे हँस रहा है?"

"जाने दो..."

"नहीं, नहीं... बता, क्यों हँस रहा है?"

आग्रह करने पर आखिर वह कहने लगाः "अभी लेना बाकी है, इसलिए मैं हँस रहा हूँ। मैं तुम्हारा वही मित्र हूँ जिसे तुमने जहर देकर मुंबई की धर्मशाला में खत्म कर दिया था और उसका सारा धन हड़प

लिया था। मेरा वह धन और उसका सूद मैं वसूल करने आया हूँ। काफी कुछ हिसाब पूरा हो गया है, केवल पाँच सौ रुपये बाकी हैं। अब मैं आपको छुट्टी देता हूँ। आप भी मुझे इजाजत दो। ये बाकी के पाँच सौ रूपये मेरी उत्तर-क्रिया में खर्च डालना, हिसाब पूरा हो जायेगा। मैं जाता हूँ... राम-राम..." और बेटे ने आँखें मूँद लीं, उसी क्षण वह चल बसा।

मेरे दोनों गालों पर थप्पड़ पड़ चुका था। सारा धन नष्ट हो गया और बेटा भी चला गया। मुझे अपने किये हुए पाप की याद आयी तो कलेजा छटपटाने लगा। जब कोई हमारे कर्म नहीं देखता है तब भी देखने वाला मौजूद है। यहाँ की सरकार अपराधी को शायद नहीं पकड़ेगी तो भी ऊपरवाली सरकार तो है ही। उसकी नजरों से कोई बच नहीं सकता।

मैंने बेटे की उत्तर-क्रिया करवायी। अपनी बची-खुची संपत्ति अच्छी-अच्छी जगहों में लगा दी और मैं साधु बन गया। आप कृपा करके मेरी यह बात लोगों को कहना। मैंने जो भूल की ऐसी भूल वे न करें क्योंकि यह पृथ्वी कर्मभूमि है।"

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥

कर्म का सिद्धांत अकाट्य है। जैसे काँटे-से-काँटा निकलता है ऐसे ही अच्छे कर्मों से बुरे कर्मों का प्रायश्चित होता है। सबसे अच्छा कर्म है जीवनदाता परब्रह्म परमात्मा को सर्वथा समर्पित हो जाना। पूर्व काल में कैसे भी बुरे कर्म हो गये हों, उन कर्मों का प्रायश्चित करके फिर से ऐसी गलती न हो जाय ऐसा दृढ़ संकल्प करना चाहिए। जिसके प्रति बुरे कर्म हो गये हों उससे क्षमायाचना करके, अपना अंतःकरण उज्जवल करके मौत से पहले जीवनदाता से मुलाकात कर लेनी चाहिए।

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं-

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।'

(गीताः ९.३०)

तथा

अपि चेदसी पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥

'यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी तू ज़्ञानरूप नौका द्वारा निःसंदेह सम्पूर्ण पाप-समुद्र से भलीभाँति तर जायेगा।'

(गीताः ४.३६)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

'सुनहु भरत भावी प्रबल'

तीन प्रकार के प्रारब्ध होते हैं- १. मन्द प्रारब्ध २. तीव्र प्रारब्ध ३. तरतीव्र प्रारब्ध।

मंद प्रारब्ध को तो आप वैदिक पुरुषार्थ से बदल सकते हैं, तीव्र प्रारब्ध आपके पुरुषार्थ एवं संतों-महापुरुषों की कृपा से टल सकता है लेकिन तरतीव्र प्रारब्ध में जो होता है वह होकर ही रहता है।

एक बार रावण कहीं जा रहा था। रास्ते में उसे विधाता मिले। रावण ने उन्हें ठीक से पहचान लिया। उसने पूछाः

"हे विधाता ! आप कहाँ से पधार रहे हैं?"

''मैं कौशल देश गया था।"

"क्यों? कौशल देश में ऐसी क्या बात है?"

"कौशलनरेश के यहाँ बेटी का जन्म हुआ है।"

"अच्छा ! उसके भाग्य में क्या है?"

"कौशलनरेश की बेटी का भाग्य बहुत अच्छा है। उसकी शादी राजा दशरथ के साथ होगी। उसके घर स्वयं भगवान विष्णु श्रीराम के रूप में अवतरित होंगे और उन्हीं श्रीराम के साथ तुम्हारा युद्ध होगा। वे तुम्हें यमपुरी पहुँचायेंगे।"

"हूँऽऽऽ... विधाता ! तुम्हारा बुढ़ापा आ रहा है। लगता है तुम सठिया गये हो। अरे ! जो कौशल्या अभी-अभी पैदा हुई है और दशरथ.... नन्हा-मुन्ना लड़का ! वे बड़े होंगे, उनकी शादी होगी, उनको बच्चा होगा फिर वह बच्चा जब बड़ा होगा तब युद्ध करने आयेगा। मनुष्य का यह बालक मुझ जैसे महाप्रतापी रावण से युद्ध करेगा? हूँऽऽऽ...!"

रावण बाहर से तो डींग हाँकता हुआ चला गया परंतु भीतर चोट लग गयी।

समय बीतता गया। रावण इन बातों को ख्याल में रखकर कौशल्या और दशरथ के बारे में सब जाँच-पड़ताल करवाता रहता था। कौशल्या सगाई के योग्य हो गयी है तो सगाई हुई कि नहीं? फिर देखा कि समय आने पर कौशल्या की सगाई दशरथ के साथ हुई। उसको एक झटका सा लगा परंतु वह अपने-आपको समझाने लगा कि सगाई हुई है तो इसमें क्या? अभी तो शादी हो... उनका बेटा हो... बेटा बड़ा हो तब की बात है। ..... और वह मुझे क्यों यमपुरी पहुँचायेगा?"

रोग और शत्रु को नज़रअंदाज नहीं करना चाहिए, उन पर नज़र रखनी चाहिए। रावण कौशल्या और दशरथ की पूरी खबर रखता था।

रावण ने देखा कि 'कौशल्या की सगाई दशरथ के साथ हो गयी है। अब मुसीबत शुरु हो गयी है, अतः मुझे सावधान रहना चाहिए। जब शादी की तिथि तय हो जायेगी, उस वक्त देखेंगे।' समय पाकर शादी की तिथि तय हो गयी और शादी का दिन नजदीक आ गया।

रावण ने सोचा कि अब कुछ करना पड़ेगा। अतः उसने अपनी अदृश्य विद्या का प्रयोग करने का विचार किया। जिस दिन शादी थी उस दिन कौशल्या स्नान आदि करके बैठी थी और सहेलियाँ उसे हार-श्रृंगार से सजा रही थीं। उस वक्त अवसर पाकर रावण ने कौशल्या का हरण कर लिया और उसे लकड़े के बक्से में बन्द करके वह बक्सा पानी में बहा दिया।

इधर कौशल्या के साथ शादी कराने के लिए दूल्हा दशरथ को लेकर राजा अज गुरु वशिष्ठ तथा बारातियों के साथ कौशल देश की ओर निकल पड़े थे। एकाएक दशरथ और वशिष्ठजी के हाथी चिंघाड़कर भागने लगे। महावतों की लाख कोशिशों के बावजूद भी वे रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। तब वशिष्ठजी ने कहाः

"छोड़ो, हाथी जहाँ जाना चाहते हों जाने दो। उनके प्रेरक भी तो परमात्मा हैं।"

हाथी दौड़ते-भागते वहीं पहुँच गये जहाँ पानी में बहकर आता हुआ लकड़े का बक्सा किनारे आ गया था। बक्सा देखकर सब चकित हो गये। उसे खोलकर देखा तो अंदर से हार-श्रृंगार से सजी एक कन्या निकली, जो बड़ी लज्जित हुई सिर नीचा करके खड़ी-खड़ी पैर के अंगूठे से धरती कुरेदने लगी।

वशिष्ठजी ने कहाः "मैं वशिष्ठ ब्राह्मण हूँ। पुत्री ! पिता के आगे और गुरु के आगे संकोच छोड़कर

अपना अभीष्ट और अपनी व्यथा बता देनी चाहिए। तू कौन है और तेरी ऐसी स्थिति कैसे हुई?"

उसने जवाब दियाः "मैं कौशल देश के राजा की पुत्री कौशल्या हूँ।"

वशिष्ठजी समझ गये। आज तो शादी की तिथि है और शादी का समय भी नजदीक आ रहा है।

कौशल्या ने बतायाः "कोई असुर मुझे उठाकर ले गया, फिर लकड़े के बक्से में डालकर मुझे बहा दिया। अब मुझे कुछ पता नहीं चल रहा कि मैं कहाँ हूँ?"

वशिष्ठजी कहाः "बेटी ! फिक्र मत कर। तरतीव्र प्रारब्ध में जैसा लिखा होता है वैसा ही होकर रहता है। देख, मैं वशिष्ठ ब्राह्मण हूँ। ये दशरथ हैं और तू कौशल्या है। अभी शादी का मुहूर्त भी है। मैं अभी यहीं पर तुम्हारा गांधर्व-विवाह करा देता हूँ।"

ऐसा कहकर महर्षि वशिष्ठजी ने वहीं दशरथ-कौशल्या की शादी करा दी।

उधर कौशलनरेश कौशल्या को न देखकर चिंतित हो गये कि 'बारात आने का समय हो गया है, क्या करूँ? सबको क्या जवाब दूँगा? अगर यह बात फैल गयी कि कन्या का अपहरण हो गया है तो हमारे कुल को कलंक लग जायेगा कि सजी-धजी दुल्हन अचानक कहाँ और कैसे गायब हो गयी?'

अपनी इज्जत बचाने कि लिए राजा ने कौशल्या की चाकरी में रहनेवाली एक दासी को बुलाया। वह करीब कौशल्या की उम्र की थी और रूप-लावण्य भी ठीक था। उसे बुलाकर समझाया कि "कौशल्या की जगह पर तू तैयार होकर कौशल्या बन जा। हमारी भी इज्जत बच जायेगी और तेरी भी जिंदगी सुधर जायेगी।" कुछ दासियों ने मिलकर उसे सजा दिया। बालों में तेल-फुलेल डालकर बाल बना दिये। वह तो मन ही मन खुश हो रही थी कि 'अब मैं महारानी बनूँगी।'

इधर दशरथा-कौशल्या की शादी संपन्न हो जाने के बाद सब कौशल देश की ओर चल पड़े। बारात के कौशल देश पहुँचने पर सबको इस बात का पता चल गया कि कौशल्या की शादी दशरथ के साथ हो चुकी है। सब प्रसन्न हो उठे। जिस दासी को सजा-धजाकर बिठाया गया था वह ठनठनपाल ही रह गयी। तबसे कहावत चल पड़ीः

विधि का घाल्या न टले, टले रावण का खेल।
रही बिचारी दूमड़ी घाल पटा में तेल॥

'बिधि' माना प्रारब्ध। प्रारब्ध में उसको रानी बनना नहीं था, इसलिए सज-धजकर, बालों में तेल डालकर भी वह कुँआरी ही रह गयी।

अतः मनुष्य को चाहिए कि चिंता नहीं करे क्योंकि तरतीव्र प्रारब्ध जैसा होता है वह तो होकर ही रहता है। किंतु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ जाये। पुरुषार्थ तो करना ही चाहिए। बिना पुरुषार्थ के कोई भी कार्य सिद्ध होना संभव ही नहीं है। यदि आपने तत्परता से, मनोयोग से, विचारपूर्वक कार्य किया हो, फिर भी सफल न हुए हों तो उसे विधि का विधान मानकर सहजता से स्वीकार करो, दुःखी होकर नहीं।

'श्रीरामचरितमानस' (अयोध्या काण्डः १७१) में तुलसीदास जी ने विधि की बात बताते हुए कहा हैः

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

बाद में पश्चाताप से क्या लाभ?

सन् १९४७ से पहले की बात है। पिलखुआ गाँव, जि. गाजियाबाद (उ.प्र.) में दलवीर खाँ नामक एक मुसलमान बढ़ई ने १०० रुपये में किसी राजपूत से एक हरा पीपल का वृक्ष खरीदा। इस सौदे में इसाक खाँ नामक दूसरा बढ़ई हिस्सेदार था। दोनों ने सोचा कि इसे काट–बेचकर जो धन आयेगा उसे बराबर भागों में दोनों बाँट लेंगे।

वृक्ष में जान होती है। कभी किसी कारण से ऊँची आत्माओं को वृक्ष की योनि में आना पड़ता है। वे आत्माएँ समझदार और कार्यशील होती हैं।

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा हैः

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां..... अर्थात् मैं सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष हूँ।

(गीताः १०.२६)

पीपल की जीवात्मा दलबीर खाँ के स्वप्न में आयी। पीपल कह रहा थाः "तुम मुझे काटने वाला हो, मेरी मृत्यु हो जायेगी। तुमने मुझे १०० रुपये में खरीदा है और जो भी मुनाफा होगा वह सब मैं तुम्हे लौटा देता हूँ। मेरी जड़ में एक जगह तुम खोदोगे तो तुमको सोने की शलाका मिलेगी। उसे बेचकर तुम्हें जो मुनाफा होगा उससे तुम्हारा सारा खर्च निकल जायेगा। इसलिए कृपा करके मुझे कल काटना मत। मुझे प्राणों का दान देना।"

दलवीर खाँ को इस स्वप्न पर यकीन नहीं हुआ। फिर भी उसने उस बात को आजमाने के लिए स्वप्न में जहाँ खोदने के लिए संकेत मिला था वहाँ खोदा तो सचमुच सोने की शलाका निकल आयी। वह अपनी अपार खुशी को गुप्त न रख सका और बीबी को जाकर बता दिया। बीबी भी आश्चर्यचकित हो उठी। दलवीर खाँ ने सोचा कि यह बात यदि अपने मित्र को बता दूँगा तो सोने की शलाका के आधे भाग की वह माँग करने लगेगा।

वह मानवता से च्युत हो गया और आधा हिस्सा बचाने के लोभ में शलाका–प्राप्ति की घटना को छुपाये ही रहा। जब इसाक खाँ उसके पास आया, तब उसके साथ वह पीपल काटने के लिए चल पड़ा

दलवीर खाँ ने मानवता को दूर रख दिया। निःस्वार्थता, लोभ–रहितता व निष्कामता मनुष्यता से हटकर दानव जैसी दुःखदायी योनियों में भटकाते हैं। जहाँ स्वार्थ है वहाँ आदमी असुर हो जाता है और जहाँ निष्कामता है वहाँ उसमें सुरत्व जाग उठता है। मनुष्य ऐसा प्राणी है जो चाहे तो सुर हो जाये, चाहे तो असुर हो जाय और चाहे तो सुर–असुर दोनों जिससे सिद्ध होते हैं उस सिद्धस्वरूप को पाकर जीवन्मुक्त हो जाय। यह मनुष्य के हाथ की बात है। वह अपने ही कर्मों से भगवान की पूजा कर सकता है और अपने ही कर्मों से कुदरत का कोपभाजन भी बन सकता है। अपने ही कर्मों से गुरुओं के अनुभव को अपना अनुभव बना सकता है और अपने ही कुकर्मों से दैत्य, शूकर–कूकर की योनियों में भटकने का मार्ग पकड़ सकता है। मनुष्य पूर्ण स्वतंत्र है।

पहले नियम था कि जो हरा वृक्ष काटना चाहे वह पहले गुड़ बाँटे। उनके साथ में दो–चार और भी साथी हो गये। सबको गुड़ बाँटा। ज्यों ही पीपल पर कुल्हाड़ा चला तो लोगों ने देखा कि पीपल में से खून की धारा फूट निकली। सब हैरान हुए कि वृक्ष में से खून की धारा ! फिर भी दलवीर खाँ लोभ के अंधेपन में यह नहीं समझ पा रहा था कि रात को इसने मुझसे प्राणदान माँगा था। यह कोई साधारण वृक्ष नहीं है और इसने मुझे सुवर्ण के रूप में अपना मूल्य भी चुका दिया है।

निःस्वार्थता से आदमी की अंदर की आँखें खुलती हैं जबकि स्वार्थ से आदमी की विवेक की आँख मुँद जाती है, वह अंधा हो जाता है। रजोगुणी या तमोगुणी आदमी का विवेक क्षीण हो जाता है और सत्त्वगुणी

का विवेक, वैराग्य व मोक्ष का प्रसाद अपने–आप बढ़ने लगता है। आदमी जितना निःस्वार्थ कार्य करता है उतना ही उसके संपर्क में आनेवालों का हित होता है और जितना स्वार्थी होता उतना ही अपनी ओर अपने कुटुंबियों की बरबादी करता है। कोई पिता निःस्वार्थ भाव से संतों की सेवा करता है और यदि संत उच्च कोटि के होते हैं और शिष्य की सेवा स्वीकार कर लेते हैं तो फिर उसके पुत्र–पौत्र सभी को भगवान की भक्ति का सुफल सुलभ हो जाता है। भक्ति का फल प्राप्त कर लेना हँसी का खेल नहीं है।

भगवान के पास एक योगी पहुँचा। उसने कहाः भगवान ! मुझे भक्ति दो।"

भगवानः "मैं तुम्हे ऋद्धि–सिद्धि दे दूँ। तुम चाहो तो तुम्हें पृथ्वी के कुछ हिस्से का राज्य ही सौंप दूँ मगर मुझसे भक्ति मत माँगो।"

"आप सब देने को तैयार हो गये और अपनी भक्ति नहीं देते हो, आखिर ऐसा क्यों?"

"भक्ति देने के बाद मुझे भक्त के पीछे–पीछे घूमना पड़ता है।"

निष्काम कर्म करनेवाले व्यक्तियों के कर्म भगवान या संत स्वीकार कर लेते हैं तो उसके बदले में उसके कुल को भक्ति मिलती है। जिसके कुल को भक्ति मिलती है उसकी बराबरी धनवान भी नहीं कर सकता। सत्तावाला भला उसकी क्या बराबरी करेगा?

जो निष्काम सेवा करता है उसे ही भक्ति ही मिलती है। जैसे हनुमान जी रामजी से कह सकते थेः "महाराज ! हम तो ब्रह्मचारी है। हमको योग, ध्यान या अन्य कोई भी मंत्र दे दीजिए, हम जपा करें। पत्नी आपकी खो गयी, असुर ले गये फिर हम क्यों प्राणों की बाजी लगायें?"

किंतु हनुमानजी में ऐसी दुर्बुद्धि या स्वार्थबुद्धि नहीं थी। हनुमानजी ने तो भगवान राम के काम को अपना काम बना लिया। इसलिए प्रायः गाया जाता हैः राम लक्ष्मण जानकी, जय बोलो हनुमान की।

'श्रीरामचरितमानस' का ही एक प्रसंग है जिसमें मैनाक पर्वत ने समुद्र के बीचोबीच प्रकट होकर हनुमानजी से कहाः "यहाँ विश्राम करें।"

किंतु हनुमानजी ने कहाः

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम।

(श्रीरामचरित. सुं.का. १)

निष्काम कर्म करने वाला अपने जिम्मे जो भी काम लेता है, उसे पूरा करने में चाहे कितने ही विघ्न आ जायें, कितनी ही बाधाएँ आ जायें, निंदा हो या संघर्ष, उसे पूरा करके ही चैन की साँस लेता है। निष्काम कर्म करने वाले की अपनी अनूठी रीति होती है, शैली होती है।

दलवीर खाँ स्वार्थ से इतना अंधा हो गया था कि रक्त की धार देखकर भी उसे भान नहीं आया कि मैं क्या कर रहा हूँ? उसने तो कुल्हाड़े पर कुल्हाड़े चलाना जारी रखा। जो स्वार्थांध बन किसी पर जुल्मोसितम ढाता है उसे प्रकृति तत्क्षण परिणाम भी देती है।

ज्यों ही उसने उस निर्दोष वृक्ष पर कुल्हाड़े मारना शुरु किया, त्यों ही उसका स्वस्थ, सुंदर, युवान बेटा, जिसके नाखून में भी रोग या बीमारी का नामोनिशान नहीं था, वह एकाएक पीड़ा से कराहते हुए गिर पड़ा। उधर पीपल में से रक्त की धार निकली और इधर बेटे के शरीर से रक्त प्रवाहित हो चला। उधर वृक्ष की शाखा का कटना था, इतने में दलवीर खाँ की आँखों के तारे, उसके बेटे का अंत हो गया। शाम को जब दलवीर खाँ घर आया, तब घर पर गाँव के समस्त लोगों को इकट्ठे शोकमग्न देखा। दलवीर खाँ को देख उसकी पत्नी चिल्ला उठीः "बेटा ! तेरा हत्यारा तो स्वयं तेरा यह बाप है।"

उसने सारा भंडा फोड़ते हुए कह दियाः "रात को पीपल का संकेत मिला था। सोने की शलाका भी मिली थी और स्वार्थ में पड़कर शलाका तो ले ली। जौ सौ रूपये खरीदने में लगाये थे और जो मुनाफा होने वाला था, स्वर्ण–शलाका से इसे उससे भी अधिक द्रव्य मिल गया था। फिर भी इसने उस पीपल के अन्याय

किया। कुदरत ने उसी अन्याय का बदला चुकाया है। ज्यों ही पीपल को काटा त्यों ही मेरे बेटे के बदन से खून की धार निकल चली। हे स्वार्थ में अंधे हुए मेरे पति ! तुमने ही अपने बेटे का खून किया है।" और वह फूट–फूट कर रुदन करने लगी।

प्रायः स्वार्थ में अंधा होकर आदमी कुकर्म कर बैठता है और जब उसे उसका फल मिलता है, तब पछताता है। मगर बाद में पश्चाताप से क्या लाभ?

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

पुजारी बना प्रेत !

उड़िया बाबा बड़ी ऊँची कमाई के धनी थे। अखंडानंदजी सरस्वती उनके प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे। वे आपस में चर्चा भी किया करते थे।

उड़िया बाबा ने एक दिन सुबह एक मृत पुजारी को सामने खड़े देखकर पूछाः "अरे, बाँके बिहारी के पुजारी ! तू तो मर गया था। तू सुबह–सुबह इधर यमुना किनारे कैसे आया?"

उसने कहाः "बाबा ! मैं आपसे प्रार्थना करने आया हूँ। मैं मर गया हूँ और संकल्प से आपको दिख रहा हूँ। मैं प्रेत शरीर में हूँ। मेरे घरवालों को बुलाना और जरा बताना कि उन्हें सुखी करने के लिए मोहवश मैंने ठाकुरजी के पैसे चुराकर घर में रखे थे। धर्मादा के पैसे चुराये इसलिए मंदिर का पुजारी होते हुए भी मेरी सदगति नहीं हुई। मैं आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मेरे बेटे से कहिए कि फलानी जगह पर थोड़े–से पैसे गड़े हैं, उन्हें अच्छे काम में लगा दे और बाँकेबिहारी के मंदिर के पैसे वापस कर दे ताकि मेरी सदगति हो सके।"

कर्म किसी का पीछा नहीं छोड़ते। था तो मंदिर का पुजारी, किंतु अपने दुष्कर्म के कारण उसे प्रेत होना पड़ा !

सूरत (गुजरात) में सन् १९९५ के जन्माष्टमी के 'ध्यान योग साधना शिविर' में कुछ लोफरों ने आश्रम के बाहर चाय की लारी से किसी महाराज का फोटो उतारा। फिर भक्तों से कहाः "तुम लोग हरि ॐ.... हरि ॐ... करते हो। तुम्हारे बापूजी हमारा क्या कर लेंगे?" और फोटो के ऊपर कीचड़वाले पैर रखकर नाचे।

शाम को उन्हें लकवा मार गया, रात को मर गये और दूसरे दिन श्मशान में पहुँच गये।

बुरा कर्म करते समय तो आदमी कर डालता है, लेकिन बाद में उसका परिणाम कितना भयंकर आता है इसका पता ही नहीं चलता उस बेचारे को।

जैसे दुष्कृत्य उसके कर्ता को फल दे देता है, ऐसे ही सुकृत भी भगवत्प्रीत्यर्थ कर्म करने वाले कर्ता के अंतःकरण को भगवद्ज्ञान, भगवद् आनंद एवं भगवद् जिज्ञासा से भरकर भगवान का साक्षात्कार करा देता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

संत की अवहेलना का दुष्परिणाम

आत्मानंद की मस्ती में रमण करने वाले किन्हीं महात्मा को देखकर एक सेठ ने सोचा कि 'ब्रह्मज्ञानी

के सेवा बड़े भाग्य से मिलती है। चलो, अपने द्वारा भी कुछ सेवा हो जाय।' यह सोचकर उन्होंने अपने नौकर को आदेश दे दिया कि "रोज शाम को महात्माजी को दूध पिलाकर आया करो।"

नौकर क्या करता कि दूध के पैसे तो जेब में रख लेता और छाछ मिल जाती थी मुफ्त में तो नमक-मिर्च मिलाकर छाछ का प्याला बाबाजी को पिला आता।

एक बार सेठ घूमते-घामते महात्माजी के पास गये और उनसे पूछाः "बाबाजी ! हमारा नौकर आपको रोज शाम को दूध पिला जाता है न?"

बाबाजीः "हाँ, पिला जाता है।"

बाबाजी ने विश्लेषण नहीं किया कि क्या पिला जाता है। नौकर के व्यवहार से महात्माजी को तो कोई कष्ट नहीं हुआ, किंतु प्रकृति से संत की अवहेलना सहन नहीं हुई। समय पाकर उस नौकर को कोढ़ हो गया, समाज से इज्जत-आबरू भी चली गयी। तब किसी समझदार व्यक्ति ने उससे पूछाः "भाई ! बात क्या है? चारों ओर से तू परेशानी से घिर गया है !"

उस नौकर ने कहाः "मैंने और कोई पाप तो नहीं किया किंतु सेठ ने मुझे हर रोज एक महात्मा को दूध पिलाने के लिए कहा था। किंतु मैं दूध के पैसे जेब में रखकर उन्हें छाछ पिला देता था, इसलिए यह दुष्परिणाम भोगना पड़ रहा है।"

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

'मुझे ऋण चुकाना है'

आज से करीब ४०-४५ साल पहले की एक घटित घटना हैः

मकराणा की एक धर्मशाला में पति-पत्नी अपने छोटे-से नन्हें-मुन्ने बच्चे के साथ रुके। धर्मशाला कच्ची थी। दीवालों में दरारें पड़ गयी थीं। ऊपर पतरे थे। आसपास में खुला जंगल जैसा माहौल था।

पति-पत्नी अपने छोटे-से बच्चे को प्रांगण में बिठाकर कुछ काम से बाहर गये। वापस आकर देखते हैं तो बच्चे के सामने एक बड़ा नाग कुण्डली मारकर फन फैलाये बैठा है। यह भयंकर दृश्य देखकर दोनों हक्के-बक्के रह गये। बेटा मिट्टी की मुट्ठी भर-भरकर नाग के फन पर फेंक रहा है और नाग हर बार झुक-झुककर सहे जा रहा है। माँ चीख उठी... बाप चिल्लायाः "बचाओ... बचाओ... हमारे लाड़ले को बचाओ।"

लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। उसमें एक निशानेबाज था। ऊँटगाड़ी पर बोझा ढोने का धंधा करता था। वह बोलाः "मैं निशाना तो मारूँ, सर्प को ही खत्म करूँगा लेकिन निशाना चूक जाय और बच्चे को चोट लग जाय तो मैं जिम्मेदार नहीं। आप लोग बोलो तो मैं कोशिश करूँ।"

पुत्र के आगे विषधर बैठा है ! ऐसे प्रसंग पर कौन-सी माँ इनकार करेगी? वह सहमत हो गयी और बोलीः "भाई ! साँप को मारने की कोशिश करो। अगर गलती से बच्चे को चोट लग जायेगी तो हम कुछ नहीं कहेंगे।"

ऊँटवाले ने निशाना मारा। साँप जख्मी होकर गिर पड़ा, मूर्च्छित हो गया। लोगों ने सोचा कि साँप मर गया है। उन्होंने उसको उठाकर बाड़ में फेंक दिया।

रात हुई। वह ऊँटवाला उसी धर्मशाला में अपनी ऊँटगाड़ी पर सो गया। रात में ठंडी हवा चली। मूर्च्छित साँप सचेतन हो गया और आकर ऊँटवाले के पैर में डसकर चला गया। सुबह में लोग देखते हैं तो ऊँटवाला मरा हुआ था।

दैवयोग से सर्पविद्या जानने वाला एक आदमी वहाँ ठहरा हुआ था। वह बोलाः "साँप को यहाँ

बुलवाकर जहर को वापस खिंचवाने की विद्या मैं जानता हूँ। यहाँ कोई आठ–दस साल का निर्दोष बच्चा हो तो उसके चित्त में साँप के सूक्ष्म शरीर को बुला दूँ और वार्तालाप करा दूँ।"

मकराणा गाँव में से आठ–दस साल का बच्चा लाया गया। उसने उस बच्चे में साँप के जीव को बुलाया। उससे पूछा गयाः

"इस ऊँटवाले को तूने काटा है?"

"हाँ।"

"इस बेचारे को क्यों काटा?"

बच्चे के द्वारा वह साँप बोलने लगाः "मैं निर्दोष था। मैंने इसका कुछ बिगाड़ा नहीं था। इसने मुझे निशाना बनाया तो मैं क्यों इससे बदला न लूँ?"

"वह बच्चा तुम पर मिट्टी डाल रहा था उसको तो तुमने कुछ नहीं किया !"

"बच्चा तो मेरा तीन जन्म पहले का लेनदार है। तीन जन्म पहले मैं भी मनुष्य था, वह भी मनुष्य था। मैंने उससे तीन सौ रुपये लिए थे लेकिन वापस नहीं दे पाया। अभी तो देने की क्षमता भी नहीं है। ऐसी भद्दी योनियों में भटकना पड़ रहा है। संयोगवश वह सामने आ गया तो मैं अपना फन झुका–झुकाकर उससे माफी ले रहा था। उसकी आत्मा जागृत हुई तो धूल की मुट्ठियाँ फेंक–फेंककर वह मुझे फटकार दे रहा था कि 'लानत है तुझे ! कर्जा नहीं चुका सका....' उसकी वह फटकार सहते–सहते मैं अपना ऋण अदा कर रहा था। हमारे लेन–देन के बीच टपकने वाला वह कौन होता है? मैंने इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ा था फिर भी इसने मुझ पर निशाना मारा। मैंने इसका बदल लिया।"

सर्पविद्या जाननेवाले ने साँप को समझायाः "देखो, तुम हमारा इतना कहना मानों, इसका जहर खींच लो।"

"मैं तुम्हारा कहना मानूँ तो तुम भी मेरा कहना मानो। मेरी तो वैर लेने की योनि है। और कुछ नहीं तो न सही, मुझे यह ऊँटवाला पाँच सौ रुपये देवे तो अभी इसका जहर खींच लूँ। उस बच्चे से तीन जन्म पूर्व मैंने तीन सौ रुपये लिये थे, दो जन्म और बीत गये, उसके सूद के दौ सौ मिलाकर कुल पाँच सौ लौटाने हैं।"

किसी सज्जन ने पाँच सौ रूपये उस बच्चे के माँ–बाप को दे दिये। साँप का जीव वापस अपनी देह में गया, वहाँ से सरकता हुआ मरे हुए ऊँटवाले के पास आया और जहर वापस खींच लिया। ऊँटवाला जिंदा हो गया।

यह बिल्कुल घटित घटना है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। मासिक पत्रिका 'कल्याण' में यह घटना छपी थी।

इस कथा से स्पष्ट होता है कि इतना व्यर्थ खर्च नहीं करना चाहिए कि सिर पर कर्जा चढ़ाकर मरना पड़े और उसे चुकाने के लिए फन झुकाना पड़े, मिट्टी से फटकार सहनी पड़े।

जब तक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक कर्मों का ऋणानुबंध चुकाना ही पड़ता है। अतः निष्काम कर्म करके ईश्वर को संतुष्ट करें और अपने आत्मा–परमात्मा का अनुभव करके यहीं पर, इसी जन्म में शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त करें।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

'वहाँ देकर छूटे तो यहाँ फिट हो गये'

सुनी है एक सत्य घटनाः

अमदावाद, शाहीबाग में डफनाला के पास हाईकोर्ट के एक जज सुबह में दातुन करते हुए घूमने निकले। नदी की तरफ दो रंगरूट (मनचले) जवान आपस में हँसी मजाक कर रहे थे। एक ने सिगरेट सुलगाने के लिए जज से माचिस माँगी। जज ने इशारे से इनकार कर दिया। थोड़ी देर इधर–उधर टहलकर जज हवा खाने के लिए कहीं बैठ गये, लेकिन उन दोनों को देख ही रहे थे। इतने में वे रंगरूट हँसी–मजाक, तू–तू, मैं–मैं करते हुए लड़ पड़े। एक ने रामपुरी चाकू निकालकर दूसरे शरीर में घुसेड़ दिया, खून कर डाला और पलायन हो गया। जज ने पुलिस को फोन आदि सब किया होगा। खून का केस बना। सेशन कोर्ट से वह केस घूमता घामता कुछ समय के बाद आखिर हाईकोर्ट में उन्हीं जज के पास आया। उन्होंने केस जाँचा तो पता चला कि केस वही है। उस दिन वाली घटना का उन्हें ठीक स्मरण था। उन्होंने अपराधी को देखा तो पाया कि यह उस दिन वाला रंगरूट युवक तो नहीं है।

वे जज कर्मफल के अकाट्य सिद्धान्त को मानने वाले थे। वे समझते थे कि लोभ–रिश्वत या और कोई भी अशुभ कर्म, पापकर्म करते समय तो अच्छा लगता है लेकिन समय पाकर उसका फल भोगना ही पड़ता है। कुछ समय के लिए आदमी किन्ही कारणों से चाहे छूट जाय लेकिन देर–सवेर कर्म का फल उसे मिलता है, मिलता है और मिलता ही है।

जज ने देखा कि यह आदमी को बूढ़ा है जबकि खून करने वाला रंगरूट तो जवान था। उन्होंने बूढ़े को अपने चेम्बर में बुलाया। बूढ़ा रोते–रोते कहने लगाः "साहब ! डफनाला के पास, साबरमती का किनारा... यह सब घटना मैं बिल्कुल जानता ही नहीं हूँ। भगवान की कसम, मैं निर्दोष मारा जा रहा हूँ।"

जज सत्त्वगुणी थे, सज्जन थे, निर्मल विचारों वाले एवं खुले मन के थे, निर्भय थे। निःस्वार्थी और सात्त्विक आदमी निर्भय रहता है। उन्होंने बूढ़े से कहाः "देखो, तुम इस मामले में कुछ नहीं जानते यह ठीक है, लेकिन सेशन कोर्ट में तुम पर यह अपराध बिल्कुल फिट हो गया है। हम तो केवल कानून का पालन करते हैं। अब इसमें हम और कुछ नहीं कर सकते। इस केस में तुम नहीं थे ऐसा तो मैं भी कहता हूँ, फिर भी यह बात उतनी ही निश्चित है कि अगर तुमने जीवनभर कहीं भी किसी इन्सान की हत्या नहीं की होती तो आज सेशन कोर्ट के द्वारा ऐसा सटीक केस तुम पर बैठ नहीं सकता था।

काका ! अब सच बताओ, तुमने कहीं–न–कहीं, कभी–न–कभी, अपनी जवानी में किसी व्यक्ति को मारा था?"

उस बूढ़े ने कबूल करते हुए कहाः "साहब ! अब मेरे आखिरी दिन हैं। आप पूछते हैं तो बता देता हूँ कि आपकी बात सही है। मैंने दो खून किये थे और रिश्वत देकर छूट गया था।"

जज बोलेः "तुम तो देकर छूट गये लेकिन जिन्होंने लिया उनसे फिर उनके बेटे लेंगे, उनकी बेटियाँ लेंगी, कुदरत किसी–न–किसी हिसाब से बदला लेगी। तुम वहाँ देकर छूटे तो यहाँ फिट हो गये। उस समय लगता है कि छूट गये लेकिन कर्म का फल तो देर–सवेर भोगना ही पड़ता है।"

कर्म का फल जब भोगना ही पड़ता है तो क्यों न बढ़िया कर्म करें ताकि बढ़िया फल मिले? बढ़िया कर्म करके फल भगवान को ही क्यों न दे दें ताकि भगवान ही मिल जायें?

नारायण.... नारायण.... नारायण.... नारायण...... नारायण...... नारायण.....

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

अद्वितीय परम तत्त्व के साथ निःस्वार्थ संयोग प्राप्त करना ही एकमात्र सच्चा कर्म है, बाकी सब गठरियाँ उठाना है।

सुलेमान प्रेत की सत्य घटना

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

''अनेक प्रकार से भ्रमित चित्तवाले, मोहरूप जाल से समावृत और विषयभोगों में अत्यंत आसक्त आसुर लोग महान अपवित्र नरक में गिरते हैं।"

(गीताः १६.१६)

मनुष्य अगर सावधान होकर सत्त्वगुण नहीं बढ़ाता है अपितु जो आया सो खा लिया, जो मन में आया सो कर लिया और इसी तरह विषय विकारों, पापों तथा बुराइयों में जिंदगी बिता दी तो उसे भयंकर नरकों में जाना पड़ता है, खूब दुःखद, दुष्ट योनियों में गिरना पड़ता है। इसलिए मनुष्य को अपना भविष्य अंधकारमय नहीं होने देना चाहिए। नहीं तो जैसी हालत सुलेमान प्रेत की हुई, वैसी हालत एक प्रेत की नहीं, कइयों की होती है।

यह घटित घटना हैः सुलेमान प्रेत को बंधन कैसे हुआ और उसकी मुक्ति कैसे हुई? इस बात को जानकर हमें बहुत कुछ सीखने को मिलेगा।

सिख पंथ के राड़ावाले संत ईश्वरसिंह महाराज के यहाँ मनमोहन नाम के बालक को लेकर उसके माता-पिता आये। मनमोहन को एक प्रेत ने सताया था। उस प्रेत से जो बातें पूछी गयीं, वे रोमांचकारी भी हैं और आश्चर्यकारक भी। इसके साथ ही ये बातें हमारे पवित्र पुराणों की सत्यता की भी पुष्टि करने वाली हैं।

ईश्वरसिंह महाराज ने उस बालक को एकांत कक्ष में ले जाकर उसके शरीर में प्रवेश किये हुए प्रेत से पूछाः "तू इसमें घुसा है तो आखिर तू है कौन?"

उसने कहाः "मैं प्रेत हूँ।"

"तेरा नाम क्या है?"

"मेरा नाम सुलेमान है।"

"सच बता तू कहाँ का है?"

"मैं ईरान का हूँ।"

"तू ईरान का है तो इधर कैसे आया?"

"जब नादिरशाह अब्दाली भारत को लूटने के लिए यहाँ आया था, तब उसके साथ मैं भी हिन्दुस्तान चला आया। वह तो हिन्दुस्तान को लूट कर चला गया लेकिन मैं रह गया। मैंने एक औरत को पटाकर उसके साथ शादी कर ली।"

"फिर क्या हुआ?"

"मैं उसके साथ रहने लगा। हमारे दो बेटियाँ और दो बेटे हुए। उनमें से मेरी एक खूबसूरत युवती लड़की का सम्बन्ध किसी हिन्दू तांत्रिक के साथ हो गया था। वह टूणे-टोटके का काम भी करता था और पाखंड भी रचता था। मैंने लड़की को बहुत समझाया कि उसके साथ सम्बंध न रखे लेकिन वह नहीं मानी। उधर तांत्रिक को भी धमकाया लेकिन मैं उसमें सफल नहीं रहा। उस जमाने के शासकों से मिला और शासन की ओर से प्रयत्न करवाया, लेकिन उसमें भी मुझे सफलता नहीं मिली। इसी चिंता में मैं बीमार हो गया। बुढ़ापा भी नजदीक आ रहा था। ऐसी हालत में मेरा मृत्युकाल निकट आ गया।

"अच्छा, सुलेमान ! तो तुम्हारी मृत्यु कैसे हुई यह बताओगे?"

"हाँ, मेरी आँखों से झर-झर पानी बहने लगा। मेरी जबान बंद हो गयी। दिल में प्रतिशोध की आग मुझे तपा रही थी। 'हे खुदाताला ! तेरी रहमत चाहता हूँ कि जिस तांत्रिक ने मेरी लड़की के साथ गलत सम्बंध

जोड़ा है, उसको कैसे भी करके ठीक करने का कोई मौका मिल जाय।' इस प्रकार प्रतिशोध की आग में तपते–तपते, प्रार्थना करते–करते मेरे प्राण निकल गये।"

"प्राण निकलते वक्त तुमने क्या देखा, सुलेमान?"

"मैंने चार यमदूत देखे। वे छाया पुरुष थे। उनका साकार रूप नहीं था।"

कई लोगों को यमदूत दिखते हैं, तब वे समझ लेते हैं कि अपना मृत्युकाल आ गया है।

मेरे एक मित्र संत हैं लाल जी महाराज। उन्होंने कई अनुष्ठान किये, चौबीस साल तक मौन रहे। उनका एक भक्त अचानक दुर्घटना के कारण गंभीर रूप से घायल हो गया और मौत की घड़ियाँ गिन रहा था। लाल जी महाराज वहाँ पहुँचे। थोड़ी बातचीत के बाद वह भक्त चीखाः "महाराज ! महाराज ! मैं मरा... वे मुझे लेने को आये हैं।"

महाराज ने पूछाः "कहाँ हैं?"

भक्तः "मेरी खाट के पाये के आगे।"

महाराज उधर गये।

भक्तः "महाराज ! वे दायीं तरफ आ गये।"

महाराज वहाँ गये।

भक्तः "महाराज ! अब वे सिरहाने के पास आ गये।"

महाराज ज्यों–ज्यों घूमते गये त्यों–त्यों यमदूत भी अपनी जगह बदलते गये। महाराज ने भगवन्नाम कीर्तन किया। आसपास में अपनी पवित्र दृष्टि फैलायी और शुभ संकल्प किया। फिर वह भक्त बोलाः "महाराज वे चले गये।" उसकी अकाल मृत्यु टल गयी। बाद में वह आदमी कई वर्षों तक जीवित रहा।

यह तो अभी की, इस जमाने की बात है। वे महाराज अभी विद्यमान हैं। उनका वह भक्त बहेरामपुर, अमदावाद में था। वह सिटी बस में ड्राइवर था और किसी सड़क दुर्घटना में उसकी ऐसी दशा हुई थी। अब वह जीवित है कि नहीं, जाँच करे तो पता चले।

हमारे पवित्र पुराणों की बात को इन घटनाओं से पुष्टि मिलती है।

सुलेमान ने कहाः "मैंने चार बड़े डरावने यमदूत देखे। मैं तो इस देह से अपनी रूह निकालना नहीं चाहता था लेकिन उन्होंने मेरी पिटाई की और मुझे बलात् निकालकर ले चले। मारते–पीटते, यातना देते–देते यमदूत मुझे यमराज के पास ले जाने लगे। वहाँ पहुँचाने में एक साल का अंतर रखा। साल भर के बाद मैं वहाँ पहुँचा।"

"फिर क्या देखा?"

"यमराज ने चित्रगुप्त को बुलाया और उसने मेरे कर्मों की कहानी उन्हें सुनायी। उसे सुनकर यमराज ने कुंभीपाक नरक में भेजने की आज्ञा दी और मुझे वहाँ ले जाया गया।"

"वहाँ क्या होता है? क्या तुम ठीक से, सच्चाई से बता सकते हो?"

"हाँ.... हाँ.... वह धरती से ८६ हजार योजन लंबा–चौड़ा नरक है। इस शरीर में जो मसाला भरा पड़ा है, वही वहाँ नरक में खुला पड़ा था। विष्ठा, मल–मूत्र, थूक, लीद–चमड़ा सब तपा हुआ एवं अत्यंत दुर्गन्धयुक्त था। उसमें प्रवेश करने का द्वार मात्र ९ इंच का ही है। उन्हें भोग–शरीर मिलता है। उसे अग्नि में डालो तो जलकर राख नहीं होता, वरन् अग्नि के ताप की पीड़ा सहता है। उसे मारो और टुकड़े कर दो तो फ्रैक्चर नहीं होता लेकिन उन सबकी पीड़ा सहते हुए वह ज्यों–का–त्यों रहता है। वहाँ उस भोग–शरीर में मैंने बहुत दुःख भोगे। उसके बाद यमराज ने कहाः "तुम काला इल्म करते थे, प्रेतों को सताते थे, प्रेतों को निकालते थे, परस्त्रीगमन करते थे और दूसरे काले कर्म करते थे। इससे तुम्हें लम्बे समय तक प्रेतयोनि में भटकना पड़ेगा। बाद में तुम खुदाताला से प्रार्थना करते–करते जिस तांत्रिक से बदला लेने की भावना रखकर मरे थे, उसका

बदला ले सकोगे।"

"तो तुम्हारा प्रेतयोनि का समय अभी तक पूरा नहीं हुआ?"

"नहीं, अब पूरा होने वाला है। मैं प्रेतयोनि पाकर सहारनपुर जिले के मुगलखेड़ा गाँव के कब्रिस्तान में जहाँ मेरी कब्र बनी थी, वहाँ रहने लगा। वहाँ मेरे साथ पाँच और प्रेत भी रहते थे।एक की उम्र पौने तीन हजार वर्ष की है, दूसरे की तीन हजार वर्ष की, तीसरे की साढ़े तीन हजार वर्ष, चौथे की पाँच हजार वर्ष और पाँचवे की उम्र चार युग की है।"

गीता का श्लोक कितनी सच्चाई का दर्शन कराता है !

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥

सुलेमान प्रेत ने आगे कहाः

"हम कब्र में रहते थे। वहाँ लोग आते थे। हालाँकि वहाँ तो हमारा सड़ा हुआ मांस होता है, बदबू आती है, लेकिन कामना और मोह के कारण अंधे हुए लोग वहाँ मत्था टेकते हैं। हम प्रेत तो उन्हें देख सकते हैं लेकिन वे हमें नहीं देख पाते। उसमें कोई ऐरा-गैरा आये और कब्र के आगे गड़बड़ करे तो हम उसे मार देते। ऐसे कई लोगों को हमने मारा। यह लड़का मनमोहन भी यहाँ आया और इसने कब्र पर पेशाब कर दिया लेकिन मैंने इसे मारा नहीं। मैंने गौर से देखा तो इसका सूक्ष्म शरीर, इसकी रूह वही तांत्रिकवाली थी। स्थूल शरीर तो मर जाता है लेकिन सूक्ष्म शरीर हजारों-लाखों जन्म लेने के बाद भी नहीं मरता।

यही मेरा वह शत्रु है जिसके लिए प्रतिशोध की आग में मैं जल रहा था। अतः इसे मैं जल्दी क्यों मारता? अब हाथ में आया तो मैं कैसे छोड़ता? मैं इसके अंदर घुस गया। पिछले सात सालों में मैंने इसे खूब सताया है। अब मेरा बदला पूरा हो गया है और मेरा समय भी पूरा हो गया है। इसीलिए आप जैसे संत के द्वार पर पहुँचा हूँ। अब आपकी रहमत से प्रेतयोनि से मेरा छुटकारा होगा।"

"सुलेमान ! तुम मनमोहन के अंतःकरण में आ गये और संत के चरणों तक पहुँच गये। अब श्रद्धा-भक्ति रखकर सत्संग सुनोगे तो मानों, तुम्हारा उद्धार हो गया। किंतु सुलेमान यह तो बताओ कि प्रेत लोग क्या खाते हैं, कहाँ रहते हैं और क्या करते हैं? यह तुम बता सकते हो क्योंकि तुम्हें कई वर्षों से इस योनि में हो, अतः अनेक अनुभवों से गुजरे होंगे।"

"हाँ, भूख लगती है तब लकड़ी के कोयले चबा लेते हैं, विष्ठा खा लेते हैं, पेशाब पी लेते हैं। हमें केवल गंदी चीजों में जाने की अनुमति होती है।"

अगर हर जगह जाने की, सब कुछ खाने की, कुछ भी करने की अनुमति होती तो मिठाईवाले की मिठाइयाँ दुकान में कैसे रह सकती थीं? प्रेत उठाकर स्वाहा कर लेते। उनके ऊपर प्रकृति का, ईश्वर का प्रतिबंध नहीं होता तो वे सत्संग भी नहीं करने देते।

"अच्छा, सुलेमान ! तुम मन्दिर में, कथा-कीर्तन में जा सकते हो?"

"नहीं, वहाँ जाने का हुक्म नहीं है। जहाँ सत्संग या पवित्र कर्म करने वाले आ जाते हैं वहाँ मानों, हमारे लिए आग खड़ी हो जाती है। हम बहुत तपते हैं। अतः हम उस जगह को छोड़कर भाग जाते हैं।"

"फिर तुम्हारा उद्धार कैसे हो सकता है? अथवा अन्य प्रेतों का एवं प्रेत जो मुगलखेड़ा गाँव की कब्र में चार युगों से सड़ रहा है उसका भला कैसे हो सकता है?"

"अगर हम किसी मनुष्य के शरीर में घुस गये और वह बंदा संत की शरण में जाय और संत स्वीकार कर लें कि "तुम बैठो, सत्संग सुनो, तुम्हारा कल्याण होगा....' तब उसके शरीर में रहकर हम अपना कल्याण कर सकते हैं।"

"वह जो चार युगों से पड़ा है उसका कल्याण कैसे होगा?"

"जैसे मुझे मनमोहन मिल गया वैसे उसे कोई मनुष्य मिल जाय, जिसके द्वारा वह संत के द्वार तक पहुँच जाय तो उसका कल्याण हो सकता है। नहीं तो भगवान अवतार लेने वाले हैं – कल्कि अवतार। उनकी रहमत से बाकी के सब प्रेतों का भला होना निर्धारित है।"

"जीवों का कल्याण कैसे हो?"

"अपने–अपने सदगुरु के द्वारा जो मंत्र मिला है, उस मंत्र का जप करने से जीवों का कल्याण होता है।"

"अच्छा, सुलेमान ! तुमने यमराज को देखा है? यमराज तुमको कैसे लगे?"

"श्वेत दुग्ध से भी उज्जवल एवं लंबी दाढ़ी और विशाल कायावाले यमराज का व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली था। वे बड़े रौबदार थे, ऊँची समझ के धनी थे और अपना रूप बदलने के सामर्थ्य भी रखते थे।"

खैर ! यह सामर्थ्य तो उन लोगों में होता ही है। देवताओं में भी होता है। वे इच्छानुसार रूप बदलने में समर्थ होते हैं।

अरे ! इस धरती पर रहने वाले भी यदि योगाभ्यास करते हैं तो उनमें बड़ा सामर्थ्य आ जाता है। गिरनार के योगी शेर का भी रूप धारण कर लेते हैं। साधारण मनुष्य भी स्वप्न में शेर बना लेते हैं, न जाने और क्या–क्या बना लेते हैं ! आपकी आत्मा में और सूक्ष्म शरीर में अथाह शक्ति है। कल्पना के जगत में आप बहुत कुछ कर सकते हैं। ऐसे ही वे देवता आदि ठोस संकल्प से बहुत कुछ कर सकते हैं।

सुलेमान ने कहाः "मैंने अपने काले इल्म और बुरी इच्छाओं का यह बहुत बुला फल पाया है।"

सुलेमान प्रेत से यह भी पुछा गयाः

"कुंभीपाक नरक में और क्या देखा?"

"अपनी पत्नी होते हुए भी जो परस्त्रीगामी थे, उनको तप्त लोहे की स्त्रियों से बलात् आलिंगन कराया जाता था। जो अपने पति को छोड़कर परपुरुष के साथ रमण करती थीं, ऐसी स्त्रियों को तप्त लोहे के पुरुषों के साथ आलिंगन कराया जाता था।"

कर्म का फल तो भोगना ही पड़ता है, चाहे कोई इसी जन्म में भोगे, चाहे जो जन्मों के बाद भोगे, चाहे हजार जन्मों के बाद भोगे।

हजार वर्षों तक नरकों में पड़ने के बजाय दो पाँच वर्ष पवित्र जीवन बिताना कितना हितकारी है !

यह मनुष्य–जन्म एक चौराहे के समान है। यहाँ से सारे रास्ते निकलते हैं। आप सत्कर्म करके देवत्व लाओ और स्वर्ग के अधिकारी बनो अथवा तो ऐसे कर्म करो कि यक्ष, किन्नर, गंधर्व बन जाओ या ऐसे घृणित कर्म करो कि ब्रह्मराक्षस बन जाओ.... आपके हाथ की बात है। जप–ध्यान–भजन, संतों का संग आदि करके ब्रह्म का ज्ञान पाकर मुक्त हो जाओ... यह भी आपके ही हाथ की बात है। फिर कोई कर्मबंधन आपको बाँध नहीं सकेगा।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

करने में सावधान

जो कर्म अभानावस्था (बेहोशी) में होते हैं, उन कर्मों का संचय नहीं होता। बाल्यावस्था अथवा मूढ़ावस्था में किये गये कर्मों का भी संचय नहीं होता। अहंकार रहित अवस्था में जो कर्म होते हैं उनका भी संचय नहीं होता तथा ज्ञानवानों के कर्मों का भी संचय नहीं होता। ऐसे ही फल की इच्छा के बिना किये गये निष्काम कर्मों का भी संचय नहीं होता।

कोई छोटा बच्चा नाचते–कूदते खेल रहा हो और नासमझी में किसी बच्चे का गला दबा दे तो उसके ऊपर दफा ३०२ का केस नहीं चलेगा। ज्यादा–से–ज्यादा उसे दो–चार चाँटे लगा देंगे। किसी ने शराब पी हो, बेहोश–अवस्था में हो गालियाँ बकने लग जाय तो उसके ऊपर मानहानि का केस लगाना उचित नहीं होगा क्योंकि उसे कर्म करने का भान ही नहीं है, नशे में कर्तापन का भाव ही नहीं है। ज्ञानी महापुरुष भी अकर्ता भाव से कर्म करते हैं इसलिए उन्हें कर्मबंधन नहीं लगता।

इसी प्रकार तुम जहाँ भी रहो, जो करो वह अकर्ता होकर करो तो तुम्हें भी कर्मबंधन नहीं लगेगा। कर्ताभाव होता है तो चलते–फिरते कीड़े–मकोड़े मर जायें तो भी कर्म का संचय होता है। किसी को पानी पिलाओ तब भी और किसी का कुछ ले लो तब भी कर्म का संचय होता है। किंतु अकर्ता भाव से करने पर वे ही कर्म बंधनकारक नहीं होते।

एक बार बुद्ध और उनके शिष्य घूमते–घामते कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने देखा कि एक साँप को बहुत–सी चींटियाँ चिपककर काट रही थीं और साँप छटपटा रहा था।

शिष्यों ने पूछाः "भंते ! इतनी सारी चींटियाँ इस एक साँप को चिपकर काट रही हैं और इतना बड़ा साँप इन चीटियों से परेशान होकर छटपटा रहा है, ऐसा क्यों? क्या यह अपने किन्हीं कर्मों का फल भोग रहा है?"

बुद्धः "हाँ, कुछ साल पहले जब हम इस तालाब के पास से गुजर रहे थे, तब एक मछुआ मछलियाँ पकड़ रहा था। हमने उसे कहा भी था कि पापकर्म मत कर। केवल पेट भरने के लिए जीवों की हिंसा मत कर लेकिन उसने हमारी बात नहीं मानी। वही अभागा मछुआ साँप की योनि में जन्मा है और उसके द्वारा मारी हुई मछलियाँ ही चींटिया ही बनी हैं और वे अपना बदला ले रही हैं। मछुआ निर्दोष जीवों की हिंसा का फल भुगत रहा है।"

महाभारत के युद्ध के पश्चात एक बार अत्यंत व्यथित हृदय से धृतराष्ट्र ने वेदव्यास जी पूछाः

"भगवान ! यह कैसी विडंबना है कि मेरे सौ पुत्र मर गये और मैं अंधा बूढ़ा बाप जिंदा रह गया ! मैंने इस जन्म में इतने पाप तो नहीं किये हैं और पूर्व के कुछ पुण्य होंगे तभी तो मैं राजा बना हूँ। फिर किस कारण से यह घोर दुःख भोगना पड़ रहा है?"

वेदव्यासजी आसन लगाकर बैठे और समाधि में लीन हुए। उन्होंने धृतराष्ट्र के पूर्वजन्मों को जाना तब उन्हें पता चला कि पहले वह हिरन था, फिर हाथी हुआ, फिर राजा बना।

समाधि से उठकर उन्होंने धृतराष्ट्र से कहाः "पूर्वजन्म में तू राजा था और शिकार करने के लिए जंगल में गया था। वहाँ हिरन को देखकर उसके पीछे दौड़ा लेकिन तू हिरन का शिकार नहीं कर पाया। वह जंगल में अदृश्य हो गया। तेरे अहं को ठेस पहुँची। गुस्सें में आकर तूने वहाँ आग लगा दी, जिससे थोड़ा हरा–सूखा घास और सूखे पत्ते जल गये। वहीं पास में साँप का बिल था। उसमें साँप के बच्चे थे जो अग्नि में जलकर मर गये और सर्पिणी अंधी हो गयी। तेरे उस कर्म का बदला इस जन्म में मिला है। इससे तू अंधा बना है और तेरे सौ बेटे मर गये हैं।"

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

जहाँ आसक्ति वहाँ जन्म

एक ब्राह्मण रोज भगवान से प्रार्थना करता था। एक दिन जब वह प्रार्थना कर रहा था, उसे देखकर उसकी पत्नी जोर–से हँस पड़ी। ब्राह्मण समझ गया कि यह मेरा मजाक उड़ा रही है। उसने पूछाः "तू हँसी

क्यों?"

"आप रोज पूजा-पाठ करते हो फिर माँगते हो कि यह दे दो, वह दे दो। मिलने के बाद भी आप तो वहीं के वहीं रह जाते हो।"

"कैसे?"

"वह मैं नहीं बता सकती पनघट से पानी भरकर एक स्त्री आ रही है, उससे जाकर पूछो।"

ब्राह्मण उस स्त्री से पूछने गया। उसने ब्राह्मण को देखते ही कहाः "आपकी पत्नी क्यों हँसी यह पूछने आये हो न? अभी मुझे प्रसूति की पीड़ा हो रही है। अब मैं घर जाऊँगी और बच्चे को जन्म देते-देते मर जाऊँगी। फिर पास के जंगल में हिरनी बनूँगी। मेरे गले में एक स्तन होगा, यह मेरी पहचान होगी। तीन साल तक मैं हिरनी के शरीर में रहूँगी। फिर इसी गाँव में फलाने ब्राह्मण के यहाँ मैं कन्या के रूप में जन्म लूँगी। तब आप मेरे पास आओगे तो यह रहस्य प्रकट हो जायेगा। आप यह रहस्य अभी नहीं समझ सकते। अच्छा, मुझे प्रसूति होने वाली है। मैं जाती हूँ।"

जाँच करने पर ब्राह्मण को पता चला कि बेटे को जन्म देकर वह स्त्री मर गयी। उसको उस स्त्री की बात सच्ची लगी। कुछ समय बाद उसने पास के जंगल में ढूँढा तो उसे गले स्तनवाली हिरनी भी मिली। फिर उसने राह देखी। तीन साल के बाद उसी ब्राह्मण के यहाँ एक कन्या ने जन्म लिया, जिस ब्राह्मण का नाम उस स्त्री ने बताया था। जब कन्या बोलने लगी तो पहले वाले ब्राह्मण ने जाकर उससे पूछाः "पहचानती हो?"

कन्याः "अच्छे से पहचानती हूँ। किंतु आप उचित समय का इंतजार करें।"

समय बीतता गया। कन्या १४-१५ साल की हो गयी। उसकी शादी हुई। दूसरे दिन ब्राह्मण उसकी ससुराल में पहुँचा और उपाय ढूँढने लगा कि 'बहू से कैसे मिलें?' आखिर उसने सोचा कि 'वह पनघट पर तो आयेगी ही।' १५-२० दिन तक राह देखी। एक दिन मौका देखकर उसने बहू से पूछाः "पहचानती हो?"

उसने कहाः "हाँ, आप वही ब्राह्मण हैं जो पूजा करते समय भगवान से माँगते थे कि 'मुझे धंधे में बरकत मिले, मेरे दुश्मन की बुद्धि का नाश हो, पत्नी ठीक चले, पुत्र मेरे पास हो...' आप ये सब नश्वर चीजें माँगते थे, इसीलिए आपकी पत्नी हँस पड़ी थी और उसने कहा थी कि 'हँसी का कारण पनिहारी बताएगी।' पनिहारी ने बच्चे को जन्म दिया और वह मर गयी। फिर वह हिरनी हुई। फिर वह ब्राह्मण-कन्या हुई और अब दुल्हन होकर जीवन-यापन कर रही है। आप पहचनाते हो उसको?"

"हाँ, वह तुम्ही हो।"

"अब जाँच करो कि जिसके साथ मेरे शादी हुई है वह ब्राह्मण कौन है?"

"अरे, पिछले से पिछले जन्म में तुम्हारे गर्भ से जन्मा बालक ही अभी तुम्हारे पति के रूप में है !"

"ठीक जान गये ब्राह्मण देवता ! ऐसे ही किसी जन्म में आप मेरे भाई थे और किसी जन्म में आपकी पत्नी मेरी बहन थी। जीव की जहाँ-जहाँ आसक्ति होती है, ममता होती है मरने के बाद वह उसी के अनुरूप शरीर धारण करके कर्म का बोझ वहन करता रहता है। इसलिए जाइये, किसी सदगुरु को खोजिये और उनकी सीख मानकर कर्म के बंधन से छूटने का यत्न कीजिए। कर्मों की गति बड़ी गहन है- **गहनो कर्मणा गतिः।**"

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

रावण की कन्या का विवाह

यदि कोई दूसरे को दोष लगाता है कि 'अमुक ने मेरे को दुःख दिया।' तो यह उसकी दुर्बुद्धि है क्योंकि अभिमानपूर्वक किये हुए कर्मरूपी सूत्र में जीव बँधा हुआ है और अपने कर्मों का फल सुख-दुःख के रूप में

भोगता है। सुख तथा दुःख देने वाला दूसरा कोई नहीं है। प्रारब्ध कर्म किसी भी प्रकार मिट नहीं सकता।

रावण के जीवन की एक घटना हैः

महाराज जनक रात्रि के तीसरे प्रहर में सिपाहियों के वेश में घूम रहे थे कि खोजें– 'मेरे राज्य में कौन सुखी और कौन दुःखी है?' घूमते–घूमते एक जगह देखा कि एक माई का छः मास का बच्चा अपनी माता के स्तन को पुनः–पुनः मुख में डाल रहा है, छोड़ता नहीं है। माता जब छुड़ाने लगी तब रोने लगा।

बालक की इस चेष्टा को देखकर रास्ते से जा रही एक पतिव्रता स्त्री हँसने लगी। सिपाही का वेश बनाकर घूम रहे राजा जनक ने उससे हँसने का कारण पूछा, तब वह कहने लगीः

"मेरे पास इतना अवकाश नहीं है, जो मैं तुम्हें इस बालक और माता की कथा सुनाऊँ।"

राजा ने समय न होने का कारण पूछा, तब वह कहने लगीः

"आज मेरे जीवन का अंतिम दिन है। मैं नदी पर जाकर स्नान करूँगी और पति के लिए जल की गागर भरकर घर पहुँचाऊँगी। फिर मेरे मकान की छत मुझ पर गिर जायेगी और मैं मर जाऊँगी। अंतिम समय मे कुछ ईश्वर–स्मरण कर लूँ इसलिए मुझे जल्दी जाना है। किंतु इतना बता देती हूँ कि वह लड़का और माता दोनों रावण की राजधानी भंगर और उसके बेटे के रूप में जन्म लेंगे तथा बेटे की शादी रावण की कन्या के साथ होगी।" ऐसा कहकर वह चल पड़ी।

राजा जनक उसके पीछे–पीछे गये और बोलेः "मैं राजा जनक हूँ, मैं तेरे से पूछना चाहता हूँ कि तुझे कैसे पता चला कि तेरे पर छत गिरेगी?"

उस स्त्री ने कहाः "मैं पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से भविष्य का सब हाल जानती हूँ।" उस स्त्री ने कहाः "मैं पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से भविष्य का सब हाल जानती हूँ।"

"जब जानती हो तो उससे बच क्यों नहीं जाती, घर जाती ही क्यों हो?"

"भावी अमिट है, भावी के आगे किसी का वश नहीं चलता।"

"किसी राजा–महाराजा, देव–दानव या ईश्वर कोटि में आये हुए, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकों का वश तो चलेगा, वे तो भावी को मिटा सकते हैं।"

"भावी के आगे किसी का वश नहीं चलता। अनेक उपाय करने पर भी भावी नहीं मिटती। अगर आपको संदेह हो तो जाकर देख लीजियेगा। राजन् ! अब मुझको न बुलाना।"

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसके पीछे–पीछे चलते रहे। उस स्त्री ने नदी में स्नान किया और एक गागर जल भरकर घर की ओर जाने लगी। घर जाकर पति को स्नान के लिए वह गागर देकर स्वयं किसी कार्य विशेष के लिए घर के अंदर गयी तो अचानक ही घर की छत गिर पड़ी। वह उसके नीचे दबकर मर गयी। राजा जनक को उस स्त्री के मरने का बड़ा दुःख हुआ, परंतु भावी के आगे उनका कुछ वश न चला। समय पाकर उसकी बातों को याद कर वे रावण की राजधानी में पहुँचे।

रावण ने राजा जनक का बड़ा सत्कार किया और आने का कारण पूछा तो राजा जनक ने पतिव्रता स्त्री की सब बातें सुनायीं। तब रावण ने सब ज्योतिषगण, देवगण, ऋषिगण, ब्रह्माजी तथा शिव–पार्वती को भी बुलाया और सबसे प्रार्थना की कि इस भावी को मिटाने का कोई उपाय बतायें। तब सबने जवाब दिया कि कर्मरेखा बदलने में हम समर्थ नहीं है। हो सकता है कभी सूर्य भगवान पूर्व को छोड़कर पश्चिम में उदय हो जायें, अग्नि शीतल हो जाये, मेरू पर्वत भी गिर जाये, पत्थर पर फूल पैदा हो जाय.... किंतु भावी नहीं मिट सकती। भाव यह है कि कर्मरेखा कभी नहीं बदल सकती।

तब रावण को अति क्रोध आया और उसने निश्चय किया कि 'जब लड़की जन्मेगी तो मैं कर्मरेखा लिखनेवाली विधात्री के साथ लड़ाई करूँगा।' जब समय आया तो लड़की का जन्म हुआ। छठी रात्रि में रावण तलवार लेकर खड़ा रहा। इतने में विधात्री कर्मफल लिखने आयी। रावण ने उसको पूछाः "क्या लिखगी?"

उसने कहाः "पहले मैं कुछ नहीं सकती। जब मैं मस्तक पर कलम रखती हूँ तब अंतर्यामी जैसी प्रेरणा करते हैं, वैसा ही लेख लिखा जाता है। लिखकर पीछे मैं बता सकती हूँ।"

रावणः "अच्छा, मेरे सामने मस्तक पर कलम रखो।"

उसने कलम रखी, अपने आप ही लेख लिखा गया। रावण ने कहाः "पढ़कर सुनाओ।"

विधात्री ने पढ़कर सुनायाः "यह कन्या अति सुंदर, पतिव्रता, सदगुणसम्पन्न व शीलवती होगी किंतु इसकी शादी भंगी के लड़के के साथ होगी, जो तुम्हारे महलों में सफाई करता है।"

रावण को बड़ा क्रोध आया परंतु कर्मफल अमिट है, ऐसा विधात्री ने उसे समझाया और शांत किया।

विधात्री के चले जाने के बाद रावण को फिर क्रोध आया। उसने भंगी के लड़के को मँगवाया जो कि छः मास का था। रावण ने बच्चे को मार डालने का निश्चय किया परंतु बिगड़ उठी और प्रजाजन कहने लगेः "बिना अपराध बच्चे को न मारें, चाहे देश निकाला दे दें।'

रावण ने उस बालक को जहाज पर चढ़ाकर समुद्रपार किसी जंगल में छुड़वा दिया, निशान के लिए लड़के के पैर की अंगुली कटवा दी। उस जंगल में किसी भी प्रकार की बस्ती न थी। अतः यह विचार किया कि यह बालक वहीं मर जायेगा। परंतु दैव उसका रक्षक है।

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवितं नाथोऽपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति॥

अर्थात् मनुष्य से रक्षा न किया हुआ भी दैव से रक्षा किया हुआ रह सकता है और मनुष्य से सुरक्षित भी दैव से मारा हुआ मारा जाता है। जैसे – ईश्वर से रक्षा किया हुआ बालक वन में भी जीता रहा और दैव का मारा हुआ घर में भी मर जाता है।

जब रावण ने उस बालक को वन में छुड़वा दिया, तब तीन दिन तक बालक भूखा रहा और अपने हाथ का अँगूठा चूसता रहा। ब्रह्मलोक में पुकार पहुँची कि बालक भूखा क्यों रह गया है?

ब्रह्माजी ने विधात्री को आज्ञा दीः "तुम इस बालक को दूध पिलाया करो और इसका पालन करो।"

उस बालक के लिए विधात्री वहाँ आया करती थी तथा उसका अच्छी तरह पालन-पोषण करती और हर प्रकार की उत्तम शिक्षा भी दिया करती थी। उसने बालक को जल पर तैरने की विद्या तथा जहाज बनाना सिखा दिया, शास्त्र-विद्या भी पढ़ा दी। जब बालक चतुर हो गया तथा धर्म में निपुण हो गया और उसकी आयु अठारह वर्ष हो गयी, तब विधात्री ने अपने द्वारा बनाये हुए जहाज पर बिठाकर उसे दूसरे टापू में भेज दिया।

वहाँ का राजा बिना संतान के मर गया था। राजमंत्रियों ने सलाह की और निर्णय किया कि 'जो पुरुष अमुक दिन प्रातःकाल शाही दरवाजा खुलते ही सबसे पहले मिलेगा, उसी को राजगद्दी पर बिठायेंगे।'

दैवयोग से उस दिन शाही दरवाजा खुलने पर यही युवक पहले मिल गया। राजमंत्रियों ने इसको राजगद्दी पर बिठाकर इसका नाम दैवगति रख दिया। वह विधात्री से शिक्षा पा चुका था, इसलिए प्रजापालन में बड़ा निपुण था। उसका यश चारों दिशाओं में फैल गया।

रावण और उसकी कन्या को दैवगति के बारे में मालूम हुआ तथा उसका चित्र भी उनके पास पहुँच गया। जब उन्होंने चित्र में दैवगति की सुंदरता देखी और दूतों से उसका यशोगान सुना, तब रावण को लगा कि 'अपनी कन्या का विवाह इसी के साथ कर दें।' और कन्या का भी मन दैवगति के पास अपने संदेश के साथ भेजा परंतु दैवगति ने शादी के लिए मना कर दिया। फिर रावण स्वयं कन्या को लेकर वहाँ गया और तुरंत उन दोनों की शादी करा दी। प्रसन्न होकर वह लंका में वापस आया और सब देवताओं को बुलाकर उनसे कहाः "आप कहते थे राजकन्या भंगी के लड़के के साथ ब्याही जा सकती है?"

यह सुनकर देवताओं ने कहाः "आपने भंगी के लड़के के पैर में एक निशान किया था। दैवगति के पैर पर उसकी जाँच करें।"

निशान देखने पर दैवगति भंगी का ही लड़का पाया गया !

तब देवताओं ने रावण को समझाया कि कर्मरेखा कभी नहीं मिटती।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

'रिश्ते मृत्यु के साथ मिट जाते हैं....'

एक बार देवर्षि नारद अपने शिष्य तुम्बरू के साथ कहीं जा रहे थे। गर्मियों के दिन थे। एक प्याऊ से उन्होंने पानी पिया और पीपल के पेड़ की छाया में जा बैठे। इतने में एक कसाई वहाँ से २५–३० बकरों को लेकर गुजरा। उसमें से एक बकरा एक दुकान पर चढ़कर मोठ खाने लपक पड़ा। उस दुकान पर नाम लिखा था – 'शगालचंद सेठ।' दुकानदार का बकरे पर ध्यान जाते ही उसने बकरे के कान पकड़कर दो–चार घूँसे मार दिये। बकरा 'बैंऽऽऽ.... बैंऽऽऽ...' करने लगा और उसके मुँह में से सारे मोठ गिर पड़े।

फिर कसाई को बकरा पकड़ाते हुए कहाः "जब इस बकरे को तू हलाल करेगा तो इसकी मुंडी मेरे को देना क्योंकि यह मेरे मोठ खा गया है।"

देवर्षि नारद ने जरा–सा ध्यान लगाकर देखा और जोर–से हँस पड़े। तुम्बरू पूछने लगाः "गुरुजी ! आप क्यों हँसे? उस बकरे को जब घूँसे पड़ रहे थे तब तो आप दुःखी हो गये थे, किंतु ध्यान करने के बाद आप हँस पड़े। इसमें क्या रहस्य है?"

नारद जी ने कहाः "छोड़ो भी.... यह तो सब कर्मों का फल है, छोड़ो।"

"नहीं गुरुजी ! कृपा करके बताइये।"

"इस दुकान पर जो नाम लिखा है 'शगालचंद सेठ' – वह शगालचंद सेठ स्वयं यह बकरा होकर आया है। यह दुकानदार शगालचंद सेठ का ही पुत्र है। सेठ मरकर बकरा हुआ है और इस दुकान से अना पुराना सम्बन्ध समझकर इस पर मोठ खाने गया। उसके बेटे ने ही उसको मारकर भगा दिया। मैंने देखा कि ३० बकरों में से कोई दुकान पर नहीं गया फिर यह क्यों गया कमबख्त? इसलिए ध्यान करके देखा तो पता चला कि इसका पुराना सम्बंध था।

जिस बेटे के लिए शगालचंद सेठ ने इतना कमाया था, वही बेटा मोठ के चार दाने भी नहीं खाने देता और गलती से खा लिये हैं तो मुंडी माँग रहा है बाप की। इसलिए कर्म की गति और मनुष्य के मोह पर मुझे हँसी आ रही हैं कि अपने – अपने कर्मों का फल को प्रत्येक प्राणी को भोगना ही पड़ता है और इस जन्म के रिश्ते – नाते मृत्यु के साथ ही मिट जाते हैं, कोई काम नहीं आता।"

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

शुभ कर्म व्यर्थ नहीं जाते

यह कर्मभूमि है। यहाँ किसी का भी कर्म व्यर्थ नहीं जाता।

धर्मदत्त नामक एक पवित्र और सदाचारी ब्राह्मण था। वह व्रत–उपवासादि करता था। श्वासोच्छावास में रामनामरूपी यज्ञ करने वाला वह ब्राह्मण एक बार निर्जला एकादशी करके दूसरे दिन अर्थात् द्वादशी के दिन प्रभातकाल में देवपूजन हेतु पूजा की थाली लिये मंदिर की ओर जा रहा था। मार्ग में एक प्रेतात्मा विकराल राक्षसी का रूप धारण करके उसके सामने आयी। उसे देखकर वह घबरा गया और हड़बड़ी में उसने पूजा की थाली जोर से राक्षसी पर दे मारी।

कथा कहती है कि पूजा की थाली में रखे हुए तुलसी–पत्र ता स्पर्श होते ही उस प्रेतात्मा की पूर्व–स्मृति जाग उठी और वह काँपती हुई दूर जा खड़ी हुई। फिर बोलीः

"हे ब्राह्मण ! आपकी इस पूजा की थाली का स्पर्श होते ही मेरा कुछ उद्धार हुआ है और मुझे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो रहा है। अब आप जैसे भगवत्प्रेमी भक्त मुझ पर कृपा करें तो मेरा उद्धार हो।

हे भूदेव ! मैं पूर्वजन्म में कलहा नामक ब्राह्मणी थी और जैसा मेरा नाम था वैसे ही मेरे कर्म थे। मैं अपने पति के साथ खूब कलह करती थी। यह देखकर मेरे पति बहुत परेशान हो गये और अपने किसी मित्र के साथ उन्होंने विचार–विमर्श किया कि "मैं अपनी पत्नी से जो भी कहता हूँ, वह उसका उलटा ही करती है।" तब मित्र ने निषेधयुक्ति से काम लेने की पद्धति मेरे पति को बतलायी।

मेरे पति घर आये और बोलेः "कलहा ! मेरा जो मित्र है न, वह बहुत खराब है। अतः उसको भोजन के लिए नहीं बुलाना है।"

तब मैंने कहाः "नहीं, वह तो बहुत सज्जन है इसलिए उसे आज ही भोजन के लिए बुलाना है।"

फिर मैंने उसे भोजन करवाया।

कुछ दिन बीतने पर मेरे पति ने पुनः निषधयुक्ति अपनाते हुए कहाः "कल मेरे पिता का श्राद्ध है किंतु हमें श्राद्ध नहीं करना है।"

मैंने कहाः "धिक्कार है तुम्हारे ब्राह्मणत्प पर ! श्राद्ध है और हम श्राद्ध न करें तो फिर यह जीवन किस काम का?"

तब पति बोलेः " अच्छा ठीक है। एक ब्राह्मण को बुलाना, किंतु वह अनपढ़ हो।"

मैंने कहाः "धिक्कार है, तुम ऐसे ब्राह्मण को पसंद करते हो ! जो संयमी हो, विद्वान हों ऐसे अठारह ब्राह्मणों को बुलाना।"

पतिः "अच्छा..... ठीक है। किंतु पकवान मत बनाना, केवल दाल रोटी बनाना।"

मैंने तो खूब पकवान बनाये। वे जो–जो निषेधयुक्त से कहते, उसका उलटा ही मैं करती। मेरे पति भीतर से प्रसन्न थे किंतु बाहर से निषेधयुक्ति से काम ले रहे थे। किंतु बाद में वे भूल गये और बोलेः

"यह जो पिण्ड है इसे किसी अच्छे तीर्थ में डाल आना।" मैंने वह पिण्ड नाली में डाल दिया। यह देखकर उन्हें दुःख हुआ किंतु वे सावधान हुए और बोलेः "हे प्रिये ! अब उस पिण्ड को नाली से निकालकर नदी में मत डालना, भले ही वह वहीं पड़ा रहे।"

मैं तो उस पिण्ड को तुरंत नाली से निकालकर नदी में डाल आयी।

इस प्रकार वे जो भी कहते, मैं उसका उलटा ही करती। वे सावधानी पूर्वक काम लेते रहते तो भी मेरा स्वभाव कलहप्रिय होने के कारण एवं मेरा कलह का स्वभाव होने के कारण मेरे पति खूब दुःखी हुए एवं संतानप्राप्ति हेतु उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया।

तब मैंने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली और वह भी इसलिए कि मेरे पति की बहुत बदनामी हो और लोग उन्हें परेशान करें।

आत्महत्या के कारण ही मुझे यह प्रेतयोनि मिली है। मैं किसी के शरीर में प्रविष्ट हुई थी किंतु जब वह कृष्णा और वेणी नदियों के संगम–तट पर पहुँचा, तब भगवान शिव और विष्णु के दूतों ने मुझे उसके शरीर से दूर भगा दिया। अब मैं किसी दूसरे के शरीर में प्रविष्ट होने के लिए ही आ रही थी कि सामने आप मिल गये। मैं आपको डराकर आपका मनोबल गिराना चाहती थी ताकि आपके श्वास द्वारा आपके शरीर में प्रविष्ट हो सकूँ, किंतु आपके पवित्र परमाणुओं से युक्त पूजा की थाली एवं तुलसी का स्पर्श होने से मेरा कुछ उद्धार हुआ है। मेरे कुछ पाप नष्ट हुए हैं किंतु अभी मेरी सदगति नहीं हुई है। अतः आप कुछ कृपा करें।"

तब धर्मदत्त ब्राह्मण ने सकल्प करके जन्म से लेकर उस दिन तक किये कार्तिक व्रत का आधा पुण्य

उस प्रेतयोनि को पायी हुई कलहा को अर्पित किया। इतने में ही वहाँ भगवान के सुशील एवं पुण्यशील नाम के दो दूत विमान लेकर आये और प्रेतयोनि से मुक्त उस कलहा को उसमें बैठाया। फिर वे धर्मदत्त से बोलेः

"हे ब्राह्मण ! जो परहित मे रत रहते हैं उनके पुण्य दुगने हो जाते हैं। अपनी दोनों पत्नियों के साथ तुम लम्बे समय तक सुखपूर्वक रहते हुए बाद में विष्णुलोक को प्राप्त करोगे। यह कलहा भी तुम्हें वहीं मिलेगी। वहाँ भी वर्षों तक रहकर फिर तुम लोग मनु-शतरूपा के रूप में अवतरित होकर तप करोगे और भगवान को पुत्ररूप में अपने घर आमंत्रित करोगे।

वरदान के फलस्वरूप तुम राजा दशरथ के रूप में जन्म लोगे और यह आधे पुण्यों की फलभागिनी कलहा तुम्हारी कैकेयी नामक रानी होगी। साथ ही स्वयं भगवान विष्णु साकार रूप लेकर श्रीराम के रूप में तुम्हारे घर अवतरित होंगे।"

यह कहते हुए दोनों पार्षद कलहा को लेकर चल दिये। कालांतर में वही बात अक्षरशः चरितार्थ हुई, जब दशरथ – कौशल्या के घर निर्गुण – निराकार ने सगुण – साकार रूप धरकर पृथ्वी को पावन किया।

कितनी महत्ता है हरिनाम एवं हरिध्यान की ! श्वास – श्वास में प्रभु नाम के रटन ने धर्मदत्त ब्राह्मण को दशरथ के रूप में भगवान के पिता होने का गौरव प्रदान कर दिया ! सच ही है कि शुभ कर्म व्यर्थ नहीं जाते।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

जप, ध्यान, स्मरण, शुभ कर्म करने से बुद्धि स्वच्छ होती है। स्वच्छ बुद्धि परमात्मा में शांत होती है और मलिन बुद्धि जगत में उलझती है।

सीता जी को भी कर्मफल भोगना पड़ा

फल दिये बिना कर्म शांत नहीं होता, कर्ता के पीछे घूमता रहता है। मनुष्य तो क्या ईश्वर भी यदि मनुष्य के रूप में अवतार लेते हैं तो उन्हें भी कर्म के सिद्धान्त का पालन करना पड़ता है।

यह तो सभी जानते हैं कि भगवती सीता साक्षात् महालक्ष्मी का अवतार थीं। फिर भी उन्हें अपने कर्म का फल भोगना पड़ा। लोकापवाद के कारण जब श्रीरामजी ने उनका त्याग किया, उस समय वे गर्भवती थीं। उन्हें उस अवस्था में पति-वियोग तथा वनवास का दुःख मिला, जो बचपन में उनसे अनजाने में हो गये अपराध का परिणाम था।

इस संदर्भ में 'पद्म पुराण' में एक कथा आती हैः

अपने बाल्यकाल में एक दिन सीताजी मिथिलानगरी में सखियों के साथ विनोद कर रही थीं। वहाँ उन्हें शुक पक्षी का एक जोड़ा दिखायी दिया, जो आपस में किलोल करते हुए भगवान श्री राम की गाथा गा रहा था कि "पृथ्वी पर श्री राम नाम से प्रसिद्ध एक बड़े सुंदर राजा होंगे। उनकी महारानी सीता के नाम से विख्यात होगी। श्री रामचंद्रजी बड़े बलवान और बुद्धिमान होंगे तथा समस्त राजाओं को वश में रखते हुए सीता के साथ ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य करेंगे। धन्य हैं श्री राम ! परम मनोहर रूप धारण करने वाली वे जानकी देवी भी धन्य हैं, जो श्री रघुनाथजी के साथ प्रसन्नता पूर्वक विहार करेंगी।"

अपना व श्रीरामजी का चरित्र सुनकर सीताजी ने सखियों से कहाः "कुछ भी करके इन पक्षियों को पकड़ लाओ।"

उन दिनों मनुष्य संकल्प करके कभी-कभी पशु-पक्षियों की भाषा समझ लेते थे और उनको समझा देते थे। इसलिए संदेह नहीं करना चाहिए कि शुक-शुकी की बात को सीता जी कैसे समझ गयी?

सखियों ने शुक-शुकी को पकड़ लिया और सीता जी को अर्पित कर दिया। सीता जी ने उन पक्षियों

से कहाः "तुम दोनों बड़े सुन्दर हो। देखो, डरना नहीं। मुझे बताओ कि तुम कौन हो और कहाँ से आये हो? राम कौन हैं और सीता कौन हैं? तुम्हें उनकी जानकारी कैसे हुई? तुम मेरी तरफ से निर्भीक रहो। मैं तुम्हें फँसाकर तंग नहीं करना चाहती, किंतु तुमने गाथा ही ऐसी गायी है जिसने मेरा मन हर लिया है।"

सीता जी के इस प्रकार प्रेमपूर्वक पूछने पर उन्होंने कहाः "देवि ! हम महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहते हैं। वे त्रिकालज्ञानी हैं। उन्होंने रामायण नामक एक ग्रंथ बनाया है। उसकी कथा मन को बड़ी प्रिय लगती है।

अपने पर अन्याय होने पर भी दूसरों पर अन्याय न करने वाले श्री रामजी की लीला एवं समता के विषय में सुनते–सुनते हमारा चित्त बड़ा प्रसन्न होता है। इसलिए हम आपस में उसी की चर्चा कर रहे थे। तुम भी उसे ध्यानपूर्वक सुनो।

भगवान विष्णु अपने तेज से चार अंश में प्रकट होंगे। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के रूप में वे अवधपुरी में अवतरि होंगे। भगवान श्री राम महर्षि विश्वामित्र के साथ मिथिला पधारेंगे। उस समय एक ऐसे धनुष को, जिसको धारण करना भी दूसरों के लिए कठिन है, देखकर वे उसे तोड़ डालेंगे और जनककिशोरी सीता को अपनी धर्मपत्नी के रूप में ग्रहण करेंगे।"

सीता जी ने पुनः पूछाः "श्रीरामजी कैसे होंगे? उनके गुणों का वर्णन करो। मनुष्यावतार में उनका श्री विग्रह कैसा होगा? तुम्हारी बातें मुझे बड़ी प्रिय लग रही हैं।"

सीता जी के प्रश्न सुनकर शुकी मन ही मन जान गयी की ये ही सीता हैं। उन्हें पहचान कर वह सामने आ उनके चरणों पर गिर पड़ी और बोलीः "श्रीराम जी का मुख कमल की कली के समान सुंदर होगा। नेत्र बड़े–बड़े था खिले हुए पंकज की शोभा को धारण करने वाले होंगे। वे अपनी शांत, सौम्य दृष्टि से जिस पर भी निगाह डालेंगे, उसका चित्त प्रसन्न और उनकी तरफ आकर्षित हो जायेगा। श्रीरामजी सब प्रकार के ऐश्वर्यमय गुणों से युक्त होंगे।

परंतु सुंदरी ! तुम कौन हो? मालूम होता है तुम ही जानकी जी हो। इसलिए अपने पति के सौन्दर्य, शूरवीरता और यशोगान का बार–बार श्रवण करना तुम्हें अच्छा लग रहा है।"

सीता जी का सिर लज्जा से थोड़ा नीचे हो गया। लज्जा प्रदर्शित करते हुए सीता जी ने मीठी मुस्कान के साथ कहाः "तुम ठीक कहती हो। मेरे मन को लुभानेवाले श्रीराम जब यहाँ आकर मुझे स्वीकार करेंगे तभी मैं तुम दोनों को छोड़ूँगी, अन्यथा नहीं। तुमने अपने वचनों से मेरे मन में लोभ उत्पन्न कर दिया है। अब तुम इच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए मेरे महल में सुख से रहो और मीठे–मीठे पदार्थों का सेवन करो।"

सीताजी की यह बात सुनकर शुकी ने कहाः "साध्वी ! हम वन के पक्षी हैं। पेड़ों पर रहते हैं और सर्वत्र विचरण करते हैं। हमें तुम्हारे महल में सुख नहीं मिलेगा। मैं गर्भिनी हूँ, अभी वाल्मीकि जी के आश्रम में अपने स्थान पर जाकर बच्चों को जन्म दूँगी। उसके बाद तुम्हारे पास आ जाऊँगी।"

सीता जी ने कहाः "कुछ भी हो, मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी।"

तब शुक ने कहाः "जानकी जी ! तुम हठ न करो, हमें जाने दो।"

सीताजीः "शुक तुम जा सकते हो। किंतु शुकी को नहीं छोड़ूँगी।"

दोनों बहुत रोये–गिड़गिड़ाये किंतु सीता जी उन्हें छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुईं।

यह सुनकर शुक दुःखी हो गया। उसने करूणायुक्त वाणी में कहाः "योगी लोग जो कहते हैं वह ठीक ही है कि "किसी से कुछ न कहें, मौन होकर रहें। नहीं तो उन्मत्त प्राणी अपने वचनरूपी दोष के कारण ही बंधन में पड़ता है।" यदि हम इस पर्वत पर बैठकर वार्तालाप न करते तो हमें यह बंधन कैसे प्राप्त होता? इसलिए मौन ही रहना चाहिए।"

इतना कहकर शुक ने पुनः सीता जी से प्रार्थना कीः "सुन्दरी ! मैं अपनी भार्या के बिना जीवित नहीं

रह सकता। इसलिए इसे छोड़ दो। मेरी इतनी प्रार्थना स्वीकार कर लो।"

किंतु सीता जी न मानीं। तब शुकी ने क्रोध और दुःख से व्याकुल होकर सीता जी को शाप दे दियाः "अरी ! जिस प्रकार तू मुझे इस समय अपने पति से अलग कर रही है, वैसे ही तुझे भी गर्भिणी की अवस्था में श्रीरामजी से अलग होना पड़ेगा।"

यह कहकर पति-वियोग के शोक से उसने प्राण त्याग दिये। पत्नी की मृत्यु हो जाने पर शुक शोकाकुल होकर बोलाः

"मैं मनुष्यों से भरी श्री रामजी की नगरी अयोध्या में जन्म लूँगा तथा ऐसी अफवाह पैदा करूँगा कि प्रजा गुमराह हो जायेगी और प्रजापालक श्रीरामजी प्रजा का मान रखने के लिए तुम्हारा त्याग कर देंगे।"

क्रोध और सीता जी का अपमान करने के कारण शुक का धोबी के घर जन्म हुआ। उस धोबी के कथन से ही सीता जी निंदित हुईं और गर्भिणी अवस्था में उन्हें पति से अलग होकर वन में जाना पड़ा।

कर्म का फल तो अवतारों को भी भोगना पड़ता है। इसी से विदित होता है कि कर्म करने में कितनी सावधानी बरतनी चाहिए।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

'गाली देकर कर्म काट रही है....'

एक राजा बड़ा धर्मात्मा, न्यायकारी और परमेश्वर का भक्त था। उसने ठाकुरजी का मंदिर बनवाया और एक ब्राह्मण को उसका पुजारी नियुक्त किया। वह ब्राह्मण बड़ा सदाचारी, धर्मात्मा और संतोषी था। वह राजा से कभी कोई याचना नहीं करता था, राजा भी उसके स्वभाव पर बहुत प्रसन्न था।

उसे राजा के मंदिर में पूजा करते हुए बीस वर्ष गुजर गये। उसने कभी भी राजा से किसी प्रकार का कोई प्रश्न नहीं किया।

राजा के यहाँ एक लड़का पैदा हुआ। राजा ने उसे पढ़ा लिखाकर विद्वान बनाया और बड़ा होने पर उसकी शादी एक सुंदर राजकन्या के साथ करा दी। शादी करके जिस दिन राजकन्या को अपने राजमहल में लाये उस रात्रि में राजकुमारी को नींद न आयी। वह इधर-उधर घूमने लगी जब अपने पति के पलंग के पास आयी तो क्या देखती है कि हीरे जवाहरात जड़ित मूठेवाली एक तलवार पड़ी है।

जब उस राजकन्या ने देखने के लिए वह तलवार म्यान में से बाहर निकाली, तब तीक्ष्ण धारवाली और बिजली के समान प्रकाशवाली तलवार देखकर वह डर गयी व डर के मारे उसके हाथ से तलवार गिर पड़ी और राजकुमार की गर्दन पर जा लगी। राजकुमार का सिर कट गया और वह मर गया। राजकन्या पति के मरने का बहुत शोक करने लगी। उसने परमेश्वर से प्रार्थना की कि 'हे प्रभु ! मुझसे अचानक यह पाप कैसे हो गया? पति की मृत्यु मेरे ही हाथों हो गयी। आप तो जानते ही हैं, परंतु सभा में मैं सत्य न कहूँगी क्योंकि इससे मेरे माता-पिता और सास-ससुर को कलंक लगेगा तथा इस बात पर कोई विश्वास भी न करेगा।'

प्रातःकाल में जब पुजारी कुएँ पर स्नान करने आया तो राजकन्या ने उसको देखकर विलाप करना शुरु किया और इस प्रकार कहने लगीः "मेरे पति को कोई मार गया।" लोग इकट्ठे हो गये और राजा साहब आकर पूछने लगेः "किसने मारा है?"

वह कहने लगीः "मैं जानती तो नहीं कि कौन था। परंतु उसे ठाकुरजी के मंदिर में जाते देखा था" राजा समेत सब लोग ठाकुरजी के मंदिर में आये तो ब्राह्मण को पूजा करते हुए देखा। उन्होंने उसको पकड़ लिया और पूछाः "तूने राजकुमार को क्यों मारा?"

ब्राह्मण ने कहाः "मैंने राजकुमार को नहीं मारा। मैंने तो उनका राजमहल भी नहीं देखा है। इसमें ईश्वर साक्षी हैं। बिना देखे किसी पर अपराध का दोष लगाना ठीक नहीं।"

ब्राह्मण की तो कोई बात ही नहीं सुनता था। कोई कुछ कहता था तो कोई कुछ.... राजा के दिल में बार-बार विचार आता था कि यह ब्राह्मण निर्दोष है परंतु बहुतों के कहने पर राजा ने ब्राह्मण से कहाः

"मैं तुम्हें प्राणदण्ड तो नहीं देता लेकिन जिस हाथ से तुमने मेरे पुत्र को तलवार से मारा है, तेरा वह हाथ काटने का आदेश देता हूँ।"

ऐसा कहकर राजा ने उसका हाथ कटवा दिया। इस पर ब्राह्मण बड़ा दुःखी हुआ और राजा को अधर्मी जान उस देश को छोड़कर विदेश में चला गया। वहाँ वह खोज करने लगा कि कोई विद्वान ज्योतिषी मिले तो बिना किसी अपराध हाथ कटने का कारण उससे पूछूँ।

किसी ने उसे बताया कि काशी में एक विद्वान ज्योतिषी रहते हैं। तब वह उनके घर पर पहुँचा। ज्योतिषी कहीं बाहर गये थे, उसने उनकी धर्मपत्नी से पूछाः "माताजी ! आपके पति ज्योतिषी जी महाराज कहाँ गये हैं?"

तब उस स्त्री ने अपने मुख से अयोग्य, असह्य दुर्वचन कहे, जिनको सुनकर वह ब्राह्मण हैरान हुआ और मन ही मन कहने लगा कि "मैं तो अपना हाथ कटने का कारण पूछने आया था, परंतु अब इनका ही हाल पहले पूछूँगा।" इतने में ज्योतिषी आ गये। घर में प्रवेश करते ही ब्राह्मणी ने अनेक दुर्वचन कहकर उनका तिरस्कार किया। परंतु ज्योतिषी जी चुप रहे और अपनी स्त्री को कुछ भी नहीं कहा। तदनंतर वे अपनी गद्दी पर आ बैठे। ब्राह्मण को देखकर ज्योतिषी ने उनसे कहाः "कहिये, ब्राह्मण देवता ! कैसे आना हुआ?"

"आया तो था अपने बारे में पूछने के लिए परंतु पहले आप अपना हाल बताइये कि आपकी पत्नी अपनी जुबान से आपका इतना तिरस्कार क्यों करती है? जो किसी से भी नहीं सहा जाता और आप सहन कर लेते हैं, इसका कारण है?"

"यह मेरी स्त्री नहीं, मेरा कर्म है। दुनिया में जिसको भी देखते हो अर्थात् भाई, पुत्र, शिष्य, पिता, गुरु, सम्बंधी – जो कुछ भी है, सब अपना कर्म ही है। यह स्त्री नहीं, मेरा किया हुआ कर्म ही है और यह भोगे बिना कटेगा नहीं।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतेरपि॥

'अपना किया हुआ जो भी कुछ शुभ-अशुभ कर्म है, वह अवश्य ही भोगना पड़ता है। बिना भोगे तो सैंकड़ों-करोड़ों कल्पों के गुजरने पर भी कर्म नहीं टल सकता।' इसलिए मैं अपने कर्म खुशी से भोग रहा हूँ और अपनी स्त्री की ताड़ना भी नहीं करता, ताकि आगे इस कर्म का फल न भोगना पड़े।"

"महाराज ! आपने क्या कर्म किया था?"

"सुनिये, पूर्वजन्म में मैं कौआ था और मेरी स्त्री गधी थी। इसकी पीठ पर फोड़ा था, फोड़े की पीड़ा से यह बड़ी दुःखी थी और कमजोर भी हो गयी थी। मेरा स्वभाव बड़ा दुष्ट था, इसलिए मैं इसके फोड़े में चोंच मारकर इसे ज्यादा दुःखी करता था। जब दर्द के कारण यह कूदती थी तो इसकी फजीहत देखकर मैं खुश होता था। मेरे डर के कारण यह सहसा बाहर नहीं निकलती थी किंतु मैं इसको ढूँढता फिरता था। यह जहाँ मिले वहीं इसे दुःखी करता था। आखिर मेरे द्वारा बहुत सताये जाने पर त्रस्त होकर यह गाँव से दस-बारह मील दूर जंगल में चली गयी। वहाँ गंगा जी के किनारे सघन वन में हरा-हरा घास खाकर और मेरी चोटों से बचकर सुखपूर्वक रहने लगी। लेकिन मैं इसके बिना नहीं रह सकता था। इसको ढूँढते-ढूँढते मैं उसी वन में जा पहुँचा और वहाँ इसे देखते ही मैं इसकी पीठ पर जोर-से चोंच मारी तो मेरी चोंच इसकी हड्डी में चुभ गयी। इस पर इसने अनेक प्रयास किये, फिर भी चोंच न छूटी। मैंने भी चोंच निकालने का बड़ा प्रयत्न

किया मगर न निकली। 'पानी के भय से ही यह दुष्ट मुझे छोड़ेगा।' ऐसा सोचकर यह गंगाजी में प्रवेश कर गयी परंतु वहाँ भी मैं अपनी चोंच निकाल न पाया। आखिर में यह बड़े प्रवाह में प्रवेश कर गयी। गंगा का प्रवाह तेज होने के कारण हम दोनों बह गये और बीच में ही मर गये। तब गंगा जी के प्रभाव से यह तो ब्राह्मणी बनी और मैं बड़ा भारी ज्योतिषी बना। अब वही मेरी स्त्री हुई। जो मेरे मरणपर्यन्त अपने मुख से गाली निकालकर मुझे दुःख देगी और मैं भी अपने पूर्वकर्मों का फल समझकर सहन करता रहूँगा, इसका दोष नहीं मानूँगा क्योंकि यह किये हुए कर्मों का ही फल है। इसलिए मैं शांत रहता हूँ। अब अपना प्रश्न पूछो।"

ब्राह्मण ने अपना सब समाचार सुनाया और पूछाः "अधर्मी पापी राजा ने मुझ निरपराध का हाथ क्यों कटवाया?"

ज्योतिषीः "राजा ने आपका हाथ नहीं कटवाया, आपके कर्म ने ही आपका हाथ कटवाया है।"

"किस प्रकार?"

"पूर्वजन्म में आप एक तपस्वी थे और राजकन्या गौ थी तथा राजकुमार कसाई था। वह कसाई जब गौ को मारने लगा, तब गौ बेचारी जान बचाकर आपके सामने से जंगल में भाग गयी। पीछे से कसाई आया और आप से पूछा कि "इधर कोई गाय तो नहीं गया है?"

आपने प्रण कर रखा था कि 'झूठ नहीं बोलूँगा।' अतः जिस तरफ गौ गयी थी, उस तरफ आपने हाथ से इशारा किया तो उस कसाई ने जाकर गौ को मार डाला। गंगा के किनारे वह उसकी चमड़ी निकाल रहा था, इतने में ही उस जंगल से शेर आया और गौ एवं कसाई दोनों को खाकर गंगाजी के किनारे ही उनकी हड्डियाँ उसमें बह गयीं। गंगाजी के प्रताप से कसाई को राजकुमार और गौ को राजकन्या का जन्म मिला एवं पूर्वजन्म के किये हुए उस कर्म ने एक रात्रि के लिए उन दोनों को इकट्ठा किया। क्योंकि कसाई ने गौ को हंसिये से मारा था, इसी कारण राजकन्या के हाथों अनायास ही तलवार गिरने से राजकुमार का सिर कट गया और वह मर गया। इस तरह अपना फल देकर कर्म निवृत्त हो गया। तुमने जो हाथ का इशारा रूप कर्म किया था, उस पापकर्म ने तुम्हारा हाथ कटवा दिया है। इसमें तुम्हारा ही दोष है किसी अन्य का नहीं, ऐसा निश्चय कर सुखपूर्वक रहो।"

कितना सहज है ज्ञानसंयुक्त जीवन ! यदि हम इस कर्मसिद्धान्त को मान लें और जान लें तो पूर्वकृत घोर से घोर कर्म का फल भोगते हुए भी हम दुःखी नहीं होंगे बल्कि अपने चित्त की समता बनाये रखने में सफल होंगे। भगवान श्रीकृष्ण इस समत्व के अभ्यास को ही 'समत्व योग' संबोधित करते हैं, जिसमें दृढ़ स्थिति प्राप्त होने पर मनुष्य कर्मबंधन से मुक्त हो जाता है। अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

कर्म का विधान

शुभ कर्म करें चाहे अशुभ कर्म करें, कर्म का फल सबको अवश्य भोगना पड़ता है।

महाभारत के युद्ध के बाद की एक घटना हैः

भीष्म पितामह शरशय्या के लेटे हुए थे। महाराज युधिष्ठिर को चिंतित और शोकाकुल देखकर भगवान श्रीकृष्ण उन्हें लेकर पितामह भीष्म के पास गये और बोलेः "पितामह ! युद्ध के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर बड़े शोकग्रस्त हो गये हैं। अतः आप इन्हें धर्म का उपदेश देकर इनके शोक का निवारण करें।"

तब भीष्म पितामह ने कहाः "आप कहते हैं तो उपदेश दूँगा किंतु हे केशव ! पहले मेरी शंका का समाधान करें। मैं जानता हूँ की शुभाशुभ कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं। किंतु इस जन्म में तो मैंने कोई ऐसा

कर्म नहीं किया और ध्यान करके देखा तो पिछले ७२ जन्मों में भी कोई ऐसा क्रूर कर्म नहीं किया, जिसके फलस्वरूप मुझे बाणों की शय्या पर शयन करना पड़े।"

तब श्रीकृष्ण ने कहाः "पितामह ! आपने पिछले ७२ जन्मों तक तो देखा किंतु यदि एक जन्म और देख लेते तो आप जान लेते। पिछले ७३ वें जन्म में आपने आक के पत्ते पर बैठे हुए हरे रंग के टिड्डे को पकड़कर उसको बबूल के काँटे भोंके थे। कर्म के विधान के अनुसार वे ही काँटे आज आपको बाण के रूप में मिले हैं।"

देर सवेर कर्म का फल कर्ता को भोगना ही पड़ता है। अतः कर्म करने में सावधान और फल भोगने में प्रसन्न रहना चाहिए। ईश्वरार्पित बुद्धि से सावधान और फल भोगने में प्रसन्न रहना चाहिए। ईश्वरार्पित बुद्धि से किया गया कर्म अंतःकरण को शुद्ध करता है। आत्मानुभव से कर्ता का कर्तापन ब्रह्म में लय हो जाता है और अपने आपको अकर्ता–अभोक्ता मानने वाला कर्मबंधन से छूट जाता है। उसे ही मुक्तात्मा कहते हैं। अतः कर्ता को ईश्वरार्पित बुद्धि से कर्म करते हुए कर्तापन मिटाते जाना चाहिए। कर्मों से कर्मों को काटते जाना चाहिए।

श्रीमद् भगवद गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि॥

'जनकादि ज्ञानिजन भी आसक्तिरहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे। इसलिए तथा लोकसंग्रह को देखते हुए भी तू कर्म करने को ही योग्य है अर्थात् तुझे कर्म करना ही उचित है।'

(गीताः ३.२०)

कर्म करने के पहले उत्साह होता है, कर्म करते वक्त पुरुषार्थ होता है और कर्म के अंत में उसका फल मिलता है। स्थूल दृष्टि से तो कभी कालांतर में फल मिल सकता है किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो कर्म करने के पश्चात् तुरंत ही उसका फल हृदय में फलित होता है।

धन पाकर, पद प्रतिष्ठा पाकर यदि आप अपने स्वार्थ की बातें सोचते हो व शोषण, छल–कपट तथा धोखाधड़ी करके सुखी होना चाहते हो तो कभी सुखी नहीं हो सकोगे क्योंकि गलत कर्म करने से आपकी अंतरात्मा ही आपको फटकारेगी और हृदय में अशांति बनी रहेगी। किंतु आप धन–पद–प्रतिष्ठा का उपयोग दूसरों की भलाई के लिए करते हो और जो अधिकार मिला है उससे भगवज्जनों की सेवा करते हो तो हृदय में शांति फलित होगी। इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने कहा हैः

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

'तू निरंतर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्यकर्म को भलीभाँति करता रह क्योंकि आक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।'

(गीताः ३.१९)

कर्म के सिद्धान्त को समझकर जो उचित ढंग से कर्म करता है, वह जन्म–मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। परंतु जो ठीक से कर्म करना नहीं जानता वह जन्म मरण के चक्कर में पीसा जाता है।

जो आदमी ठीक से गाड़ी चलाना नहीं जानता उसके भरोसे कोई यात्रा करना चाहे तो उसकी यात्रा कैसे सफल होगी? जो चालक न स्टियरिंग पर रख पाता है, न ब्रेक और क्लच का ठीक उपयोग कर सकता है, न एक्सिलरेटर (गतिवर्धक) पर नियंत्रण रख पाता है वह तुम्हें मंजिल तक कैसे पहुँचा पायेगा? उसके द्वारा गाड़ी कहीं–न–कहीं टकरा जायेगी या गड्ढे में जा गिरेगी। ऐसे ही तुम्हारे मनरूपी चालक को कर्मरूपी साधन का ठीक से उपयोग करना आ जाये तो तुम्हारे जीवन की शाम होने से पहले वह तुम्हें जीवनदाता तक पहुँचा देगा, नहीं तो कहीं–न–कहीं टकराकर जन्म–मरण के गड्ढे में गिरा देगा। फिर चाहे दो पैरवाली, चार पैरवाली,

दस पैर वाली या बैपैर सर्प, केंचुआ आदि योनियों में ले जाये, चाहे किसी दास–दासी के घर ले जाय या सेठ–सेठानी के, कोई पता नहीं। सेठ के घर जन्म लो चाहे नौकर के घर, पशु के गर्भ में आओ चाहे पक्षी के, जन्म तो जन्म ही होता है।

जन्मदुःखं जरादुःखं जायदुःखं पुनः पुनः
अंतकाले महादुःखं तस्माद् जाग्रहि जाग्रहि॥

बार–बार जन्म लेना और मरना महा दुःखरूप है। मनुष्य–जन्म ही एक ऐसा अवसर है जिसमें इस महादुःख से छूटने का सौभाग्य मिलता है। तुम अपनी समझ का सदुपयोग करो, अपने सत्–अनुभवों का आदर करो और सत्पुरुषों एवं सत्शास्त्रों से मार्गदर्शन पाकर अपना जीवन सफल बना लो।

जो भी कर्म करो उत्साह एवं तत्परता से करो, कुशलतापूर्वक करो – **योगः कर्मसु कौशलम्** । कोई काम छोटा नहीं है और कोई काम बड़ा नहीं है। परिणाम की चिंता किये बिना उत्साह, धैर्य और कुशलतापूर्वक कर्म करने वाला सफलता प्राप्त कर लेता है। अगर वह निष्फल भी हो जाय तो हताश–निराश नहीं होता बल्कि विफलता को खोजकर फेंक देता है और फिर तत्परता से अपनी उद्देश्यपूर्ति में लग जाता है। जप ध्यान और ईश्वर प्रीत्यर्थ कर्म सर्वोत्तम कर्म हैं।

'श्रीमद् भगवदगीता' भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से भी यही बात कही हैः

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

'हे धनंजय! तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्यकर्मों को कर, समत्वभाव ही योग कहलाता है।'

(गीताः २.४८)

एक बार श्री रामकृष्ण परमहंस का एक शिष्य बाजार से जो सब्जी खरीदकर लाया उसमें दो पैसे ज्यादा दे आया। रामकृष्ण परमहंस जब समाधि से उठे तब उन्होंने शिष्य से पूछाः

"बैंगन क्या भाव लाया?"

"ठाकुर ! दो आने सेर लाया।"

"मूर्ख ! डेढ़ आने सेर की चीज के इतने ज्यादा पैसे दे आया? जब तू इतनी सी सब्जी खरीदना नहीं जानता तो परमात्मा को कैसे जान सकेगा?"

महत्त्व पैसों का नहीं है किंतु फिर कभी किसी काम में गलती न करे, इसीलिए करूणा करके श्री रामकृष्ण परमहंस ने शिष्य को डाँटा।

बुहारी करते–करते किसी से कहीं कोई कचरा रह जाता तो उसे भी ऐसे ही डाँटते कि "ठीक से बुहारी करके आँगन साफ नहीं कर सकता तो अपना हृदय कैसे शुद्ध करेगा? कैसे पवित्र करेगा?"

कुशलतापूर्वक कर्म करना भी योग है। जिस समय जो कर्म करो वह पूरी समझदारी व तत्परता से करो। सिपाही हो तो सिपाही की डयूटी पूरी तत्परता से निभाओ और साहब हो तो उस पद का सदुपयोग करके सबका हित हो ऐसे कर्म करो। श्रोता बनो तो ऐसे बनो कि सुनी हुई सब बातें तुम्हारी बन जायें और वक्ता बनो तो ऐसे बनो कि परमात्मा से जुड़कर निकलनेवाली वाणी से अपना और दूसरों का कल्याण हो जाय। पुजारी बनो तो ऐसी पूजा करो कि पूजा करते–करते अपने–आपको भूल जाओ और पूजा ही बाकी रह जाय।

आजकल लोग पुजारी, साधु या भक्त का लिबास तो पहन लेते हैं और मानते हैं कि हम पूजा करते हैं, भक्ति करते हैं। ऐसा करके वे अपने स्वाभाविक कर्तव्यकर्म से भागना चाहते हैं व पलायनवादी हो जाते हैं। जबकि सच्चा भक्त आलसी–प्रमादी नहीं होता, बुद्धु या पलायनवादी नहीं होता। वह तो कर्म को भी पूजा मानकर ऐसे भाव से कर्म करता है कि उसका कर्म करना भक्ति हो जाता है। जो भक्ति के बहाने काम से जी

चुराता है, वह तो मूढ़ है। ऐसे लोगों के लिए ही भगवान श्री कृष्ण ने कहा हैः

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

'जो मूढ़बुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियों को हठपूर्वक ऊपर से रोककर मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिंतन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है।'

(गीताः ३.६)

ऐसे मिथ्याचारी का जीवन खुद के लिए और समाज के लिए बोझ बन जाता है। हमारे देश के लोगों ने जबसे गीता का यह दिव्य ज्ञान भुला दिया है, तभी से कर्म में लापरवाही, पलायनवादिता, आलस्य, प्रमाद आदि खामियाँ आ गयीं जो इस देश के पतन का कारण बनीं। परदेश के लोगों के पास भले ही भगवद् गीता का ज्ञान नहीं है किंतु उन लोगों में एक सदगुण तो यह है कि जिस समय जो काम करेंगे, उसमें पूरी तत्परता व दिलचस्पी से लग जायेंगे। पाश्चात्य संस्कृति से हमारी संस्कृति महान है, दिव्य है किंतु उसकी महानता और दिव्यता का गुणगान करते हुए बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। टालमटोली करके काम बिगाड़ने की आदत को शीघ्र ही सुधारना होगा। श्रीमद् भगवद् गीता के ज्ञान को फिर से आचरण में लाना होगा। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

यस्तिवन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥

'हे अर्जुन! जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।'

(गीताः ३.७)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

चाहे कोई देखे या न देखे फिर भी कोई है जो हर समय देख रहा है। जिसके पास हमारे पाप–पुण्य सभी कर्मों का लेखा–जोखा है। इस दुनिया की सरकार से शायद कोई बच भी जाय पर उस सरकार से आज तक न कोई बचा है और न बच पायेगा। किसी प्रकार की सिफारिश अथवा रिश्वत वहाँ काम नहीं आयेगी। उससे बचने का कोई मार्ग नहीं है। कर्म करने में तो मानव स्वतंत्र है कितुं फल भोगने में कदापि नहीं। किसी ने कहा हैः

हँस–हँस के किया गया पाप रो–रोकर भोगना पड़ता है।
कष्ट सहन करके किया गया तप सुख–शांति का कारण बनता है॥

अतः हे मानव ! कर्म करने में सदैव सावधान रहो। कर्म तो करो लेकिन कर्म की आसक्ति का, कर्म के फल का त्याग करोगे तो बुद्धि स्वच्छ और सात्त्विक होगी। स्वच्छ बुद्धि में परमात्म–विषयक जिज्ञासा उत्पन्न होगी, फिर तो संन्यासी और योगी को जो आत्मा–परमात्मा का अनुभव होता है वही तुमको होगा और तुम मुक्तात्मा हो जाओगे।

परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

अनुक्रम